राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ

प्रधान कार्यालय : डा. हेडगेवार भवन, महाल, नागपुर - ४४०१२०
दूरभाषः (०७१२) २७२३००३, २७२०१५०, फैक्सः २७२१५८६
E-mail : hedgewarbhavan@rediffmail.com

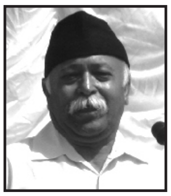

संन्देश

श्रद्धेय ठाकुर रामसिंह जी राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रचारक रहे। उनका सम्पूर्ण प्रचारक जीवन हम सब लोगों के लिए निर्भयता, ध्येयनिष्ठा, परिश्रमों की दृढ़ता तथा चरित्र की निर्मल निस्पृहता का उज्जवल उदाहरण है। उनके जन्मशती के उपलक्ष्य में शोध संस्थान नेरी से प्रकाशित होने वाली त्रैमासिक पत्रिका 'इतिहास दिवाकर' के द्वारा उनके जीवन के इन पहलुओं को तथा पंजाब से लेकर सुदूर असम प्रान्त के संघ कार्य में तत्पश्चात इतिहस संकलन के कार्य में किये गए मौलिक योगदान को जन–जन में सुपरिचित बनाने का कार्य यशस्वी होगा, यह विश्वास है।

विशेषांक के सफल प्रकाशन में लगे सभी कार्यकर्त्ता बंधुओं का अभिनन्दन तथा शुभकामनाएं।

(मोहन भागवत)

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ

प्रधान कार्यालय : डा. हेडगेवार भवन, महाल, नागपुर - ४४०१२०
दूरभाषः (०७१२) २७२३००३, २७२०१५०, फैक्सः २७२१५८६
E-mail : hedgewarbhavan@rediffmail.com

संन्देश

यह जानकर अत्यंत हर्ष हुआ कि त्रैमासिक इतिहास दिवाकर पत्रिका श्रद्धेय ठाकुर रामसिंह के जन्तशताब्दी वर्ष पर उनके जीवन और कार्य पर विशेषांक प्रकाशित कर रहा है।

राष्ट्र की नई पीढ़ी के लिए अपने महापुरुषों का जीवन सदैव प्रेरणा और दिशादर्शन का स्रोत रहता है। श्रद्धेय ठाकुर रामसिंह जी का सम्पूर्ण जीवन ही अनुकरणीय रहा है। एक श्रेष्ठ विचार का मन से स्वीकार करने के बाद उसके अनुरूप अपना सम्पूर्ण जीवन जीकर उन्होंने सदैव पद यश कि आकांक्षा से मुक्त रहकर जीवन के अंतिम क्षण तक कार्य किया। संघ कार्य याने संघ जो कहे वहीं संघ कार्य ऐसा स्वयं के उदाहरण से हम सबको समझाया फिर वह चाहे हिमाचल में संघ कार्य का प्रारम्भ करना हो, असम में संघकार्य को स्थायी करना हो या इतिहास संकलन योजना को मूर्त रूप देना हो।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह विशेषांक पाठको को श्रद्धेय ठाकुर रामसिंह के जीवन और कार्य पर संग्रहणीय एवं प्रेरक सामग्री उपलब्ध कराने में सफल रहेगा। मेरी हार्दिक शुभकामनायें।

(भय्या जोशी)

डॉ. सतीश चन्द्र मित्तल
अध्यक्ष - अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना
सेवा निवृत प्राध्यापक इतिहास विभाग
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय

(M) : 0-9319480430
पता : ६/१२७७-ए, माधव नगर,
सहारनपुर - २४७००१, उत्तर प्रदेश
email : prof.scmittal@gmail.com

संन्देश

मुझे यह जानकर बेहद प्रसन्नता हुई कि श्रद्धेय ठाकुर रामसिंह की जन्म शताब्दी के उपलध्य में शोध संस्थान, नेरी, अपनी त्रैमासिक शोध पत्रिका 'इतिहास दिवाकर' उस महान कमयोगी के जीवन एवं कार्यों पर एक विशेषांक निकालने वाली है। वस्तुतः ठाकुर रामसिंह का जीवन एक सतत जीवन्त गाथा है जिन्होंने अपने त्याग तपस्या एवं समर्पण से पंजाब जम्मू–कश्मीर, हिमाचल, हरियाणा, दिल्ली से लेकर भारत के सुदूर पूर्व असम प्रदेश तक राष्ट्र जागरण तथा भारतीय संस्कृति की ज्योति प्रज्ज्वलित की। मेरे जैसे अनेक साधारण व्यक्तियों को न केवल इतिहास दृष्टि दी बल्कि भारत के अतीत से वर्तमान तक के सही तथ्यात्मक तथा प्रमाणिक इतिहास लिखने की प्रेरणा दीं, उनका जीवन उस प्रत्येक व्यक्ति के लिए जो उनके सम्पर्क में आया, सदैव प्रेरणा का स्रोत रहा।

निश्चय ही विशेषांक देश की युवा पीढ़ी में राष्ट्र प्रेम समाज सेवा देशभक्ति तथा भारतीय इतिहास दृष्टि प्रदान करने में मार्गदर्शक होगा। इस विशेषांक के प्रकाशन के लिए मेरी ओर से हार्दिक शुभकामनायें।

सतीश चन्द्र मित्तल

(सतीश चन्द्र मित्तल)

अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना

बाबा साहेब आपटे स्मृति भवन, 'केशव-कुंज', झण्डेवाला,
नयी दिल्ली-११००५५

संन्देश

यह जानकर अपार हर्ष हुआ कि 'इतिहास दिवाकर' का आगामी अंक श्रद्धेय ठाकुर राम सिंह जी की जन्मशती के अवसर पर विशेषांक के रूप में प्रकाशित किया जा रहा है।

श्रद्धेय ठाकुर रामसिंह जी इतिहास एवं संस्कृति के मूर्धन्य विद्वान थे। वह अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना के संस्थापक–सदस्य और उसके प्रथम राष्ट्रीय अध्यक्ष भी रहे। उनके कार्यकाल में 'योजना' का चतुर्दिक् कार्य–विस्तार हुआ।

पूज्यनीय ठाकुर जी से मेरा संबंध सन् 1993 में ही आ गया था, किन्तु 2007 में 'योजना' से जुड़ाव के बाद दिल्ली में उनके सान्निध्य में रहने का अवसर मिला और उनके देहावसान होने तक उनसे स्नेह और मार्गदर्शन प्राप्त करता रहा।

ठाकुर जी की जन्मशती (2015–16) के अवसर पर 'इतिहास दिवाकर' का प्रकाश्य अंक ठाकुर जी के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व का समुचित प्रकाश डालेगा, ऐसा मुझे विश्वास है। पत्रिका के सफल प्रकाशन हेतु मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ।

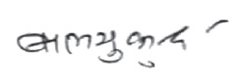

(बालमुकुन्द पाण्डेय)

इतिहास दिवाकर

त्रैमासिक अनुसंधान पत्रिका

वर्ष ७ अंक ४ पौष मास कलियुगाब्द ५११६ जनवरी २०१५

मार्गदर्शक :
डॉ० शिवाजी सिंह
चेतराम
इरविन खन्ना

सम्पादक :
डॉ० विद्या चन्द ठाकुर

सह सम्पादक
चेतराम गर्ग

सम्पादक मण्डल :
डॉ० रमेश शर्मा
डॉ० ओम प्रकाश शर्मा

टंकण एवं सज्जा :
अश्वनी कालिया

सम्पादकीय कार्यालय :
ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान,
नेरी, गांव—नेरी, डाकघर—खगल
जिला—हमीरपुर—१७७००१ (हि०प्र०)
दूरभाष : ०१९७२—२०३०४४

मूल्य:
प्रति अंक —१५.०० रुपये
वार्षिक — ६०.०० रुपय

itihasdivakar@yahoo.com
chetramneri@gmail.com

अनुक्रमणिका

	संदेश	३-६
	सम्पादकीय	८
१.	काल की अवधारणा	११
२.	काल के प्रवाह सोपानों का परिज्ञान	१६
३.	भारतीय इतिहास शास्त्र एवं कालक्रम	२३
४.	भारत के इतिहास का विनाश व विकृतिकरण एवं उसका निराकरण	३६
५.	राष्ट्रीय महापर्व : वर्ष प्रतिपदा	५३
६.	महात्मा बुद्ध का युग	५६
७.	हमारे साधु संत एवं समाज	६१
८.	भारत विभाजन का ऐतिहासिक मूल कारण	६७
९.	हिमालय क्षेत्र - आंतरिक एकता का सूत्र	७४
१०.	सिकन्दर न तो महान था न विश्व विजेता	८६
११.	कटोच राजवंश और उसका इतिहास	९०
१२.	विलक्षण व्यक्तित्व द्वितीय सरसंघचालक	९७
१३.	लाहौर में संघ का पौधा लगा	१००

सम्पादकीय

ठाकुर रामसिंह जी की कर्मशक्ति का ज्योति पथ

ईश्वर के विधान में जिसने जन्म लिया, उसकी मृत्यु निश्चित है। इस विधान का प्रतिपादन में भगवान श्रीकृष्ण गीता में करते हैं कि जन्म-मरण के प्रवाह को कदापि रोका नहीं जा सकता जिसने जन्म लिया, उसकी मृत्यु होगी ही और जिनकी मृत्यु होती है, वे अवश्य पुनः जन्म लेते हैं —

जातस्य कि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च। *गीता २/२७*

इस आवागमन के चक्र में विशेष बात यह है कि कुछ लोग अपने जीवन में कुछ ऐसे कीर्तिमान स्थापित करते हैं कि वे मर कर भी अमर हो जाते हैं। ऐसी ही अमर विभूति हैं राष्ट्रचिन्तक इतिहासवेत्ता स्वर्गीय ठाकुर रामसिंह जी जिनकी कर्मशक्ति का ज्योति पथ मानव समाज और राष्ट्र पथ को सदा आलोकित करता रहेगा।

वीरव्रती यशस्वी इतिहास पुरुष ठाकुर राम सिंह जी *का जन्म आज से एक सौ वर्ष पहले विक्रमी संवत् १९७१ के फाल्गुन मास की ४ प्रविष्टे तदनुसार माघ शुक्ल तृतीया, कलियुगाब्द ५०१६ एवं ईस्वी सन् 16 फरवरी, 1915 को वर्तमान हिमाचल प्रदेश के जिला हमीरपुर के झण्डवीं गांव में माता श्रीमती नियातु की कोख से पिता श्री भाग सिंह के घर में हुआ था।*

भारतवर्ष का गौरवशाली इतिहास सत्य तथ्यों के साथ प्रकाश में लाना ठाकुर रामसिंह जी का परम लक्ष्य रहा है। इसके लिए वे देश भर में निरन्तर प्रवास करते रहे। लक्ष्य पूर्ति के ध्येय से वे आजीवन अपनी ९६ वर्ष की आयु पर्यन्त पूर्ण आत्मविश्वास के साथ ***चरैवेति! चरैवेति!*** *के ऋषि संदेश को चरितार्थ करते हुए कभी यहां तो कभी वहां चलते रहे! चलते रहे! कभी थके नही! लेकिन असंख्य विद्वानों को लक्ष्य पूर्ति की अदम्य प्रेरणा देकर अपने यशस्वी संकल्प का विस्तार करके कलियुगाब्द ५११२, विक्रमी संवत् २०६७, भाद्रपद, सौर मास की प्रविष्टे २२, कृष्ण त्रयोदशी तदनुसार ६ सितम्बर, २०१० को इस लोक से चले गए तथा पंचतत्त्व में विलीन हो कर ब्रह्मलीन हो गए।*

बाल्यकाल से ही श्रद्धेय ठाकुर राम सिंह जी की प्रतिभा कुशाग्रता सम्पन्न थी। सन् १९४१ में वे लाहौर में एफ. सी. महाविद्यालय में एम.ए. (इतिहास) के छात्र थे। उसी बीच वे सितम्बर, १९४१ में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के स्वयंसेवक बने। सन् १९४२ में एम. ए. की अन्तिम परीक्षा में इन्होंने एफ.सी. कॉलेज में प्रथम स्थान अर्जित किया। महाविद्यालय के प्राचार्य ने इन्हें महाविद्यालय में इतिहास के प्रवक्ता के पद पर कार्य करने को कहा। आप ने इस पद को स्वीकार नहीं किया और राष्ट्रभक्ति के पोषणार्थ राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रचारक बन गए।

सन् १९४२ में लाहौर से ५८ स्वयंसेवकों ने प्रचारक का दायित्व सम्भाला। पंजाब प्रान्त के तत्कालीन प्रान्त प्रचारक श्री माधव राव मूले ने प्रचारक के रूप में ठाकुर

जी की नियुक्ति कांगड़ा में की। दो वर्ष के उपरान्त सन् १६४४ में इन्हें अमृतसर विभाग प्रचारक का दायित्व सौंपा गया। सन् १६४६ के जुलाई मास में पंजाब प्रान्त के प्रचारकों की बैठक में स्वर्गीय बाला साहब देवरस जी ने ठाकुर रामसिंह को गंगा विश्न, बाबूराम पालथीकर और आगरकर के साथ पूर्वी भारत की योजना के लिये कलकत्ता बुलाया। कलकत्ता में परम पूज्य श्रीगुरु गोलवलकर जी ने एक बैठक ली और ठाकुर राम सिंह जी को असम प्रान्त के प्रचारक का दायित्व प्रदान किया गया। ठाकुर जी १६४६ से १६७१ तक २२ वर्ष असम के प्रान्त प्रचारक रहे। २२ वर्षों में इन्होंने पूर्वोत्तर भारत में संघ कार्य का कोने-कोने तक विस्तार किया। सन् १६७१ में इन्हें पंजाब में संघ का कार्य दिया गया। संघ में प्रान्त प्रचारक, सह क्षेत्र प्रचारक और क्षेत्र प्रचारक के रूप में इन्होंने चिरस्मरणीय कार्य किये। सन् १६८८ में इन्हें भारतीय इतिहास संकलन की महत्त्वाकांक्षी योजना को समुचित दिशा प्रदान करने की जिम्मेवारी मिली। सन् १६६२ में ठाकुर राम सिंह सर्वसम्मति से अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना के राष्ट्रीय अध्यक्ष चुने गए। सन् २००२ तक वे इस पद पर रहे।

राष्ट्रीय अध्यक्ष का दायित्व निभाते हुए ठाकुर रामसिंह जी ने विदेशी आक्रातांओं के निर्देशन में लिखे भारतीय इतिहास की भ्रान्तियों को दूर करके राष्ट्रीय इतिहास की वैभवशाली समृद्ध परम्परा को प्रकाश में लाने के लिये सुव्यवस्थित कार्य योजनाएं बनाई जिसके परिणामस्वरूप सारे देश में जनमानस का ध्यान राष्ट्र की समृद्ध ऐतिहासिक परम्पराओं की ओर आकृष्ट हुआ। देश के सभी प्रान्तों में इतिहास संकलन समितियां गठित हुई। इन समितियों के माध्यम से आर्य भारत के मूल निवासी हैं, महाकल्प–कल्प–मन्वन्तर एवं चतुर्युगी व्यवस्था पर आधारित भारतीय वैज्ञानिक कालगणना, वर्ष प्रतिपदा, कलियुगाब्द की ५२ वीं शताब्दी इत्यादि राष्ट्रीय महत्व के विषयों से अवगत करवाने के देशव्यापी कार्य इनकी सुदृढ़ निष्ठा और गहन अनुभव से ही सफल हो पाए हैं। इतिहास संकलन योजना पर प्रकाश डालते हुए ठाकुर जी कहते थे कि अपनी मातृभूमि, पुण्य भूमि भारत की प्राचीनता और गौरवमय अतीत को प्रकाश में लाकर विदेशियों तथा उनके संकेत एवं अनुसरण पर कुछ भारतीय इतिहासकारों द्वारा विकृत किए गए भारत के इतिहास को भारतीय ऐतिहासिक स्रोतों, लोकश्रुतियों, नवीन पुरातात्त्विक खोजों और राष्ट्रीय दृष्टिकोण से लिखी गई शोध सामग्री को संकलित करके, ऐसा इतिहास लिखने की आवश्यकता है जो केवल पराजय की ही कहानियां न कहे, अपितु वह राष्ट्रमानस के लिय प्रेरणा का स्रोत बने जिसे पढ़कर हम गौरव से अपना सर ऊंचा कर के कह सकें कि भारत विश्व का गुरु रहा है और आज भी इसमें विश्व गुरु बनने का पूर्ण सामर्थ्य है।

ठाकुर रामसिंह जी के कटिबद्ध संकल्प के फलस्वरूप भारतीय इतिहास संकलन समिति, हिमाचल प्रदेश के मार्गदर्शक एवं तत्कालीन प्रान्त कार्यवाह राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, श्री चेतराम जी के सुनियोजित प्रयासों से हमीरपुर जिला के नेरी गांव में ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान की स्थापना हुई है। इस शोध संस्थान के माध्यम से ठाकुर जी ने वर्तमान श्वेत वाराह कल्प के १६७ करोड़ वर्ष के इतिहास

लेखन की योजना का दिशा निर्देशन किया है। जिस पर शोध संस्थान में सक्रियता से कार्य हो रहा है।

४ फाल्गुन, विक्रमी संवत् २०७१, कलियुगाब्द ५११६, तदनुसार १६ फरवरी २०१५ को ठाकुर रामसिंह जी के जन्म का 100 वां जन्म दिवस है। अतः इनकी जन्म शताब्दी के स्मरणीय पावन अवसर पर इतिहास दिवाकर का प्रस्तुत अंक **ठाकुर रामसिंह जन्म शताब्दी विशेषांक** के रूप में प्रकाशित किया गया है। इस विशेषांक में ठाकुर जी के प्रकाशित सभी उपलब्ध लेखों को सम्मिलित किया गया है। ये लेख भारतीय इतिहास दृष्टि के सम्यक् ज्ञान और राष्ट्र गौरव की सम्यक् पहचान करवाते हैं। शोध संस्थान की श्रद्धेय ठाकुर जी के जन्म शताब्दी वर्ष, (१६ फरवरी २०१५ से १६ फरवरी २०१६ तक) में **ठाकुर रामसिंह स्मृति ग्रन्थ** प्रकाशित करने की योजना है। स्मृति ग्रन्थ में ठाकुर जी के लिखित लेख, उनसे जुड़े संस्मरण, उन द्वारा लिखे महत्त्वपूर्ण पत्र एवं स्मरणीय चित्र सम्मिलित होंगे। ठाकुर जी के सम्पर्क में रहे सभी महानुभावों से प्रार्थना है कि वे सम्बन्धित अपेक्षित सामग्री शोध संस्थान को उपलब्ध करवा कर कृतार्थ करें ताकि स्मृति ग्रन्थ में अधिकाधिक पूर्णता का समावेश सम्भव हो सके।

जन्म शताब्दी के पावन पर्व पर ठाकुर जी के बद्धमूल सद्मार्ग का अनुगमन करते हुए इनके कार्यों को हम मिल कर सक्रियता से आगे बढ़ाए जिसके परिणामस्वरूप राष्ट्र के परम वैभव की आकांक्षा पूर्ति में हम सब की सहभागिता सुनिश्चित हो

विनीत,

डॉ. विद्या चन्द ठाकुर

काल की अवधारणा

भारतीय साहित्य में काल एक प्रत्यय है क्योंकि इसके बारे में विचार-विमर्श किया जा सकता है। व्याकरण के अनुसार यह शब्द गणनार्थक है अथवा प्रेरणार्थक है। यह कल् धातु के भाव अर्थ में "धञ्" प्रत्यय लगाने से बनता है।

वैदिक विद्वान निरुक्तकार यास्क इसे गत्यार्थक धातु से बना मानते हैं। इस से स्पष्ट होता है कि काल का संबंध गति से है। काल स्वयं चलता है और सभी को चलने की प्रेरणा देता है। काल और जगत एक साथ चलते हैं और इतिहास का आरंभ भी यहीं से होता है।

व्याकरण के महाभाष्यकार महर्षि पतंजलि के अनुसार काल वह है जो वस्तुओं का उपचय अथवा अपचय करता है अर्थात् जिस से वस्तुओं की वृद्धि अथवा संहार होता है। वह काल है। "वाक्यपदीय" में भर्तृहीर ने इसे "विभु" बतलाया है। विभु का अर्थ है सर्वव्यापक। "विश्व की काल यात्रा" नामक पुस्तक में लिखा है कि हिरण्यगर्भ के विस्फोटित विश्वद्रव्य से जब सृष्टि का चक्र शुरू हुआ तो सर्वप्रथम कालपुरुष (काल) की स्थापना हुई और लाखों वर्षों के बाद जब मनुष्य जीवनयापन करने की सभी साधनभूत आवश्यकताएँ पूर्ण हो गयीं तो मानवोत्पत्ति हुई और प्रकृति का विकास बंद हो गया।

वैसे प्रकृति में सभी प्राणियों के बीज मौजूद रहते हैं और समय आने पर जीवमान हो जाते हैं, परन्तु नानाविध शक्तिमयी प्रकृति महाकाल के संसर्ग से काल को उत्पन्न करती है। तत्पश्चात काल अपने से भिन्न पदार्थों को पैदा करता है।

महाकाल की उत्पत्ति

सृष्टि के पालक और संहारी काल जिस काल के द्वारा कलयित किये जाते हैं वही महाकाल है। यह काल परमेश्वर रूप होने के कारण अनादि और अनन्त है।

काल सर्वव्यापक है। काल का अनुभव सभी प्राणियों को है। काल की सत्ता सब चराचर भूतों पर प्रभावी है। काल सर्वोपरि है। सभी काल की सत्ता के अधीन हैं। काल की कृपा का नाम आयु है और कोप मृत्यु है। काल अथ और इति से परे है। अग्नि, वायु और प्रकृति सभी दूसरी शक्तियां काल के अधीन हैं।

काल की अद्भुत महिमा को देख कर इतिहास के आदि युग-देवयुग में महर्षि भृगु ने काल के संबंध में जो गीत गाया है वह निम्नलिखित है —

"काल अपार है। काल की शक्ति अनन्त है। काल सब को देखता है। वह सहस्र आँखों वाला है। सभी काल के रथ पर बैठे हैं। ज्ञानी इस अश्व पर सवार होते हैं। मूर्खों पर यह स्वयं सवार होता है। ये लोक इस अद्भुत रथ के पहियों के साथ घूमते हैं। इस रथ की धुरी में अमृत है तभी तो वह कभी रुकने या थम जाने का नाम नहीं लेता है। काल लोकरूपी पहियों को आगे धकेलता है। काल पहला देव है। काल के सिर पर एक पूर्ण कुंभ रखा हुआ है। यह घड़ा अनेक रूप धरता है। इस सूर्यरूपी घट में ही केवल काल, मनमोहक यौवन और शुष्क जरा के अनेकरूप देखने में आते हैं। वह काल सब से ऊँचे लोक में है।"

काल ने ही रीते भवनों को जीवन से भर दिया है, काल ने रंग बिरंगे जीवन को एक जगह इकट्ठा कर दिया है। पितररूप में जो काल था वह पुत्ररूप में बन गया। काल के परे कुछ भी नहीं है। काल ने द्युलोक को बनाया, काल ने ही पृथ्वी को उत्पन्न किया। भूत भविष्य की हलचल काल में आश्रित है। सब का होना काल के अधीन है। सूर्य का तपना काल के आधार पर है। काल सूर्य को छोड़ दे तो सूर्य भी जीवन सुधा भूल जाता है। सब पदार्थ काल के बल पर टिके हैं। आँख जो रात दिन देखती है वह काल का ही पसारा है।

हमारा मन, प्राण और नाम सब काल के साथ टंका हुआ है। काल के वरदान को पास आया जानकर सब लोक आनन्द से नाच उठते हैं। तप और ब्रह्मशक्ति काल में है। प्रजापति औरों के पिता हैं। प्रजापति का पिता काल है। काल सब पर ईश्वर है। काल ने ब्रह्माण्ड को प्रेरणा दी। काल से उसमें हलचल है। काल ब्रह्म की शक्ति बन कर प्रजापति को संभालता है। काल ने प्रजाओं को बनाया और उनसे भी पहले प्रजापति को बनाया। स्वयंम्भू कश्यप काल से बने और काल ने ही तप को पैदा किया।

जल काल से उत्पन्न हुआ। काल से दिशायें निकलीं। काल पाकर सूर्य आकाश में ऊँचे उठते हैं और काल की गति से फिर नीचे डूब जाते हैं। काल पाकर ही बड़ी बड़ी आंधियाँ उठती हैं। वायु प्रदेश की सफाई करती चली जाती हैं। काल के मंगल से पृथ्वी औषध, वनस्पतियों की बढ़ती को पाती है। काल की कृपा से द्युलोक मेघों को गर्भ में भर कर महान बनता है।

विधाता के मन्त्र ने काल में पहले भूत और भविष्य को रख कर देख लिया। ऋक, यजु और साम का त्रिविध चक्र काल से फैला। काल ने यज्ञ के सनातन ताने-बाने को फैलाया। उसी ने गन्धर्व और अप्सराओं के नाना भान्ति के घोड़ों (चन्द्र, नक्षत्र, इन्द्रिय आदि) को बनाया। काल पर ही सब लोक प्रतिष्ठत हुए। अथर्वा और अंगिरा (प्राण और मन) काल पर रुके हुए हैं। यह लोक और परलोक, सब पवित्र विधान, व्रत और मर्यादा में काल की कीली पर टिके हुए हैं। काल सब को वश में रखता हुआ ब्रह्म की शक्ति से घूमता है। काल परम देव है।

"इन मन्त्रों में काल से संबंध रखने वाले अनेक दार्शनिक सिद्धान्तों का समावेश पाया जाता है। काल की प्रकट और गुप्त अचिंत्य महिमा को इतने ओजस्वी शब्दों में वर्णन करने वाले ये शब्द विश्व के साहित्य में बेजोड़ हैं।" (वासुदेव शरण अग्रवाल)

सृष्टि रचना

स्थिति और गति दोनों काल पर आधारित है। काल ने सब प्राणियों की उत्पत्ति में प्रमुख भाग लिया है। जब तक देश के साथ काल न मिले तब तक सृष्टि का ढांचा तैयार नहीं होता है। दार्शनिक देश और काल के मिलने को सृष्टि का मूल कारण मानते हैं। देश स्थिति है काल उसको गति देता है।

संसार का अर्थ है जो चले। संसार का अस्तित्व काल पर आधारित है। जगत का भी शब्दार्थ वही है - "गच्छति इति जगतः" जो जाता है वह जगत है। काल के बिना जाना नहीं हो सकता है। एक वस्तु का दूसरे स्थान पर चले जाना भर गमन क्रिया है। इसके पीछे की प्रेरक शक्ति काल ही है।

परिपूर्ण सत्य

सत्य अधूरा नहीं होता है। वह ९९ प्रतिशत भी नहीं होता। एक प्रतिशत कम होने से वह असत्य बन जाता है। सत्य शत प्रतिशत है। पश्चिम के वैज्ञानिक काल की सर्वव्यापकता एवं प्रभुता को समझ नहीं सके। वह टाईम और काल को समान समझते हैं। परंतु टाईम एक खंड है। काल अखंड है। टाईम शुरू होता है और समाप्त होता है। काल सदा से है और सदा रहेगा। भारतीय चिंतन परम्परा में काल समय नहीं वह तत्त्वात्मक है। हमारे भारतीय ऋषियों ने काल को देखा, उसका अध्ययन, विश्लेषण और संषलेषण किया, परंतु वे यहीं पर नहीं रुके। उन्होंने काल का साक्षात्कार किया और योग के माध्यम से वे जन्म और मृत्यु से भी आगे छलांग लगाने में सफल हो गये। वास्तव में काल परिपूर्ण सत्य है अर्थात् पूर्ण ज्योति।

काल अविभाज्य है

काल अखंड और परिपूर्ण सत्य होने के कारण अविभाज्य है। परंतु फिर भी काल को भूत, वर्तमान और भविष्य में विभक्त करने की बात चली। सांसारिक हिसाब किताब में भूतकाल केवल घटनाओं की याद या स्मृति होता है और भविष्य होता है योजना या आकांक्षा। इस प्रकार याद या स्मृति और आकांक्षा की शून्यता ही वर्तमान है।

अद्वैत

भारतीय ऋषि मुनि काल की गति के जानकार थे। वे जानते थे कि ब्रह्म एक है, परंतु सन्देह न हो इस कारण उसे अद्वैत कहा अर्थात् एक है दो नहीं। सृष्टि का प्रत्येक कण काल के क्षण-क्षण से एकात्म है। इसलिये हिन्दू ऋषियों ने हजारों वर्ष पूर्व चन्द्र ग्रहण और सूर्य ग्रहण की तिथियों को जानने की चमत्कारिक योग्यता प्राप्त कर ली थी।

सांसारिक जीवन में सुख और दुःख का चक्र चलता रहता है। गहन दुःख और अवसाद का एक घंटा गहन सुख आनंद के ६० घंटों से भी अधिक बड़ा होता है। वास्तव में दुःख कालावध है। आनन्द का अर्थ है काल शून्यता का बोध। स्मृतियाँ और आकांक्षायें मनुष्य को काल के अधीन करती हैं। (भूत-भविष्य) दोनों का अभाव अर्थात् शून्यता व्यक्ति के चित को काल के बाहर ले जाती है। काल के बाहर हो जाने के विज्ञान का नाम "योग" है। काल के बाहर हो जाने की चित्त दशा का नाम "समाधि"

है।

पाश्चात्य जगत के लोगों को "समाधि" का अनुभव नहीं हो पाया। योग उनके लिये केवल व्यायाम है और इसी कारण वह योगा बना। समाधि की जानकारी के चलते भारत में ऐसे महान योगी हुए जिन्होंने काल को खूंटी पर बांध दिया।

काल के दो रूप – मूर्त एवं अमूर्त

एक तो वह काल है जो हमें परमाणु, अणु, त्रुटि, निमेष, लव और युग के रूप में अनुभव में आता है, मूर्तकाल है। घड़ी की सूई से बनने वाला मिनटों और घन्टों वाला मूर्तकाल प्रगति का फल है। इनके पीछे की प्रेरणा देनेवाली जो शक्ति है वह अव्यक्त अथवा अमूर्त है। काल का जो मूर्तरूप है वह सृष्टि को प्रेरणा देता हुआ भी सृष्टि का मूल कारण नहीं हो सकता। सृष्टि का असली कारण वास्तव में ब्रह्म की अचिन्त्य शक्ति है। श्वेताश्वतर उपनिषद् में सृष्टि के कारण की खोज में एक कारण काल को भी बताया है। वास्तव में जो काल ब्रह्म शक्ति का ही दूसरा नाम है जो सब देवों और सब भूतों के पीछे है वही अमूर्त शक्ति सृष्टि का बीज है। इसी काल को लक्ष्य करते हुए इसे अथर्ववेद में परम देव कहा है। भारतीय दार्शनिक परिभाषा में काल और ब्रह्म पर्यायवाची हो जाते हैं।

अमूर्त काल के अवयव

अमूर्त काल के अवयवों की जानकारी सूर्य के द्वारा मिलती है। लव, निमेष से युग पर्यन्त काल सूर्य पर आधारित है। यह काल का शुक्ल पक्ष है। काल का जो एक रस, अखंड रूप है उसमें मास, ऋतु और संवत्सर के चिन्ह नहीं हैं। हमारे सामने जो काल का प्रचार है उस पर कोई किसी भी प्रकार का पक्का निशान नहीं है। काल के हिसाब-किताब की कल्पना अमूर्तकाल की दृष्टि से माया है। अमूर्त काल को मूर्तकाल की तुलना में कृष्ण कहा गया है। सूर्य मूर्त काल का प्रतीक है। उस के विपरीत जो एक रस अविभाज्य, अखंड काल है वह कृष्ण रूप होने के कारण कागभुशुण्डि कहा गया है। कागभुशुण्डि अमर है। मृत्यु उनको छू नहीं सकती। जब तक सृष्टि है तभी तक सूर्य और मूर्त काल है।

अहोरात्रवाद

काल के ऊपर कहे गये दो रूपों की दार्शनिक छानबीन करने का प्राचीन नाम अहोरात्रवाद है। ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में कहा गया है कि सृष्टि के पहले दिन और रात का विलगाव नहीं था। रात और दिन एक जोड़ा है। वास्तव में जगत द्विधाबद्ध है। यथा दिन सृष्टि है। रात प्रलय है। दिन प्रकाश है। रात अन्धकार। दिन शुक्ल भाव है और रात कृष्ण भाव। दिन स्थिति है, रात विघटन। दिन ज्ञान है, रात अज्ञान। ब्रह्माण्ड में जब तक सूर्य जैसे संचित शक्ति केन्द्र है तब तक सृष्टि और मूर्त काल है। जब शक्ति के अद्यः प्रवाह से उसके संचित केंद्र विलीन हो जायेंगे और शक्ति समान रूप से फैल जायेगी तब सृष्टि समाप्त हो जायेगी। वही कृष्ण काल का प्रलय है। ब्रह्म की अचिंत्य शक्ति के द्वारा

फिर सृष्टि रचना होगी। यह सृष्टि चक्र अनादि से चलता आया है और आगे भी चलता रहेगा।

संकल्प

हमारा प्रचलित संकल्प सूत्ररूप में काल का परिचय देता है। इसमें पांच विषय आते हैं – किस स्थान में, किस काल में, कौन व्यक्ति, किस काम को, किस उद्देश्य से करना चाहता है। यही संकल्प का पाठ है।

भारतीय कालगणना के अनुसार मूर्तकाल के प्रारंभिक सूक्ष्म अवयव – 'परमाणु, अणु, त्रस्रेणु, त्रुटि, वेध, लव, निमेष, क्षण, काष्ठा, लघु नाड़िका ये १२ हैं। आगे काल के परिमाप दिन, पक्ष, मास, अयन, वर्ष, युग, महायुग, मन्वन्तर, कल्प, ब्रह्मा, महाकल्प तक कुल मिलाकर २८ अवयव हैं।

व्यक्त काल के इन भेदों का काल (अमूर्त काल) की अनन्तता के साथ जो संबंध है उसे पुराणकारों ने लोमश ऋषि की कल्पना से स्पष्ट किया है। सृष्टि ब्रह्मा का एक दिन है और प्रलय एक रात्रि है। ऐसे दिन और रात्रि को जोड़ कर जब ब्रह्मा की आयु के १०० वर्ष हो जाते हैं तो यह ब्रह्मा की एक आयु है। लोमश ब्रह्मा का पुत्र है। ब्रह्मा की एक आयु लोमश की आयु का एक दिन है। इसका अर्थ है कि लोमश को अपने पिता का प्रत्येक दिन श्राद्ध करना पड़ेगा। परंतु लोमश अपने सिर का पूरा क्षोर नकारकर अपने सिर का एक रोम उखाड़कर फैंक देता है। इसका अर्थ है कि लोमश के एक -एक रोम में ब्रह्मा की एक-एक आयु के बराबर काल की सत्ता बनाई है। लोमश के नाम से पता चलता है कि उनके रोम रोम में काल का अनन्त परिमाण भरा हुआ है। लोमश के शरीर के रोमों की गणना करने में कौन समर्थ है ?

लोमश की आयु में कितनी सृष्टियां और प्रलय पार हो जाते हैं। अनन्त काल को कौन नाप सकता है, गणित के अंकों की कल्पना करने में बुद्धि चकराने लगती है। मेटरलिंक के शब्दों में "काल और देश, जीवन और चैतन्य, अनन्तता और नित्यता में अगम्य रहस्य हैं।"

सन्दर्भ पुस्तकें :

१. विश्व की काल यात्रा,
२. भारतीय वैज्ञानिक और वैश्विक कालगणना,
३. विश्व संवाद पत्रिका - लखनऊ का काल गणना विशेषांक

काल के प्रवाह सोपानों का परिज्ञान

भारतीय वैदिक कालज्ञ ऋषियों ने काल को अपने सूक्ष्म अध्ययन का विषय बनाया। उन्होंने काल का अर्थ, परिभाषा, स्वरूप, सर्वव्यापकता, महिमा, अगम्य और अथाह अनन्तता आदि सर्वपक्षों की गहराई से खोज कर काल के प्रवाह सोपानों का इतिहास लिखा है।

ऋषियों ने सर्वप्रथम काल की सूक्ष्म इकाईयों का आविष्कार किया। तत्पश्चात उन्होंने काल का परिगणन काल की सूक्ष्मातिसूक्ष्म इकाई परमाणु से आरंभ कर उत्तरोत्तर बड़ी से बड़ी इकाईयों का निर्माण करते करते सारे ब्रह्माण्ड को संपूर्णतः व्याप्त करने वाली महानतम इकाई 'महाकाल' का निर्माण कर डाला। परंतु ऋषि प्रज्ञा वहां तक ही नहीं रूकी, अपितु पुराणकारों ने भूतकाल के इन सोपानों को ब्रह्मा के पुत्र लोमश जिसकी आयु का एक दिन ब्रह्मा की सारी आयु (१०० वर्ष) के बराबर होता है, का प्रतीकात्मक उदाहरण प्रस्तुत कर काल की अथाह एवं अगम्य अनन्तता के साथ जोड़ दिया। इसे भारतीय प्रतिभा का अद्भुत चमत्कार ही कहा जा सकता है।

कालगणना

मूर्त काल के विभिन्न अवयवों की जानकारी विज्ञान के जिस शास्त्र से प्राप्त होती है उसका नाम है काल गणना। वर्तमान में विश्व में ७० से अधिक कालगणनायें प्रचलित हैं। इन सब में प्राचीनतम ही नहीं अपितु काल के तत्व पर आधारित वैज्ञानिक एवं वैश्विक एकमात्र युगों की भारतीय कालगणना ही है। अन्य सभी कालगणनायें काल के तत्व पर आधारित नहीं है, अपितु देश विशेष, वर्ग या सम्प्रदाय विशेष, महापुरूष विशेष एवं घटना विशेष से संबन्धित हैं।

भारतीय कालगणना के निर्माताओं कालज्ञ वैदिक ऋषियों ने जो काल का परिगणन काल की सूक्ष्म इकाईयों के आविष्कार से किया। ये सूक्ष्म इकाईयां निम्नलिखित हैं –

२ परमाणु	=	१ अणु
३ अणु	=	१ त्रस्रेणु
३ त्रस्रेणु	=	१ त्रुटि
१०० त्रुटि	=	१ वेध
३ वेध	=	१ लव
३ लव	=	१ निमेष
३ निमेष	=	१ क्षण

५ क्षण	=	१ काष्ठा
१५ काष्ठा	=	१ लघु
१५ लघु	=	१ नाडिका
६ नाडिका	=	१ प्रहर
८ प्रहर	=	१ दिन-रात

भारतीय वैज्ञानिक भास्कराचार्य काल की उपरोक्त चौथी ईकाई 'त्रुटि' को काल की सूक्ष्म ईकाई मानते हैं। इसका परिमाप - त्रुटि एक सैकंड का ३३७५०वां भाग है। कमल के पत्ते को यदि सूई की नोक से छेदा जाये तो छेदन में जितना समय लगता है वह त्रुटि का परिमाप है।

उपरोक्त सूक्ष्मतम इकाईयों का आविष्कार विज्ञान के तीव्रतम गति वाले पदार्थों के परिमाप के लिये किया है।

काल की सूक्ष्मतम इकाईयों के अतिरिक्त भारतीय कालगणना में उत्तरोत्तर बड़ी से बड़ी इकाईयों का समावेश हुआ है।

काल के विभिन्न खंडों का निर्माण

काल के विभिन्न खंडों का निर्माण आकाशीय ग्रहों की विभिन्न गतियों के कारण होता है। वैदिक ऋषियों ने वर्तमान सृष्टि को पंचमण्डल क्रम वाली खोजा। ये मण्डल हैं - चन्द्र मण्डल, पृथ्वी मण्डल, सूर्य मण्डल, परमेष्ठी मण्डल एवं स्वायम्भुव मण्डल। ये मण्डल क्रम से एक दूसरे के गिर्द मण्डल आकार में घूमते हैं। उदाहरणार्थ चन्द्र मण्डल पृथ्वी मण्डल के गिर्द, पृथ्वी मण्डल सूर्यमण्डल, सूर्य मण्डल परमेष्ठी मण्डल और परमेष्ठी मण्डल स्वायम्भुव मण्डल के गिर्द घूमते हैं। इनका एक दूसरे के गिर्द परिभ्रमण ही काल के खंडों का निर्माण करता है।

कालगणना की दीर्घतम इकाई महाकल्प का आरम्भ दिनमान से होता है।

दिनमान

दिन चार प्रकार के होते हैं – (१) सावन दिन, (२) सौर दिन, (३) चान्द्र दिन एवं (४) नाक्षत्र दिन।

(१) **सावन दिन** : पृथ्वी अपनी धुरी पर १६०० कि.मी. प्रति घंटे की गति से घूमती है। इसके लिये उसे एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक लगभग २४ घंटे लगते हैं। इसमें पृथ्वी का पूर्वार्द्ध सूर्य के सामने और पश्चिमार्द्ध सूर्य के पीछे रहता है। जो भाग सूर्य के सम्मुख होता है उसे दिन और जो भाग सूर्य के पीछे होता है उसे रात्रि कहा जाता है। इस प्रकार अहोरात्र का निर्माण होता है। यह सावन दिन कहलाता है।

(२) **सौर दिन** : पृथ्वी की दूसरी गति सूर्य की परिक्रमा की है। इसमें पृथ्वी एक लाख कि.मी. प्रति घंटे की गति से सूर्य के चारों ओर घूमती है। ऐसा करने में उसे वर्तमान में लगभग ३६५.२५ अहोरात्र या सावन दिन लगते हैं। यदि पृथ्वी की कक्षा को ३६० घण्टों में विभक्त किया जाये तो पृथ्वी का

अपनी कक्षा पर एक अंश का चलन एक सौर दिन कहलायेगा। सौर दिन सावन दिन से लगभग २१ मिनट बड़ा होता है।

(३) **चान्द्र दिन** : चान्द्र दिन को तिथि कहते हैं। चन्द्रमा को पृथ्वी के गिर्द घूमते हुये १२ अंश तक चलन एक तिथि या चान्द्र दिन कहलाता है। अमावस्या के दिन चन्द्रमा, पृथ्वी और सूर्य के मध्य सूर्य से ठीक नीचे होता है। यह स्थिति 0अंश कहलाती है। उस समय चन्द्रमा सूर्य से निकट होता है। उसके बाद चन्द्रमा का १२ अंश तक सूर्य से दूर चलन चन्द्रमा की एक तिथि या दिन कहलाता है। इसी प्रकार चन्द्रमा का सूर्य से १८० अंश दूर जाना पूर्णिमा कहलाती है। अमावस्या के बाद पूर्णिमा तक के समय शुक्ल पक्ष की तिथियां होती है। पूर्णिमा के बाद चन्द्रमा प्रति १२ अंश के हिसाब से सूर्य के निकट आना शुरू होता है। इसे कृष्ण पक्ष की तिथियां कहते हैं। इस प्रकार १५ तिथि का कृष्ण पक्ष और १५ तिथि का शुक्ल पक्ष होता है। इन दोनो पक्षों की तिथियों को जोड़ कर ३० तिथियों का एक चन्द्र मास होता है।

(४) **नाक्षत्र दिन** : पृथ्वी अपनी धुरी पर पश्चिम से पूर्व की ओर घूमती है। अतः हमें ग्रह नक्षत्र पश्चिम की ओर जाते लगते हैं। पृथ्वी का कोई भी निश्चित स्थान जब किसी नक्षत्र के सामने से घूमता हुआ अगले दिन उसी नक्षत्र के सामने आ जाता है तो नक्षत्रों का एक चक्र पूरा हो जाता है। इसको एक नाक्षत्र-दिन कहते हैं। इस प्रकार ३० नाक्षत्र दिनों का एक नाक्षत्र मास कहलाता है।

दिन अथवा बार का आरंभ

सूर्य सिद्धांत के अनुसार सृष्टि का आरम्भ अर्द्धरात्रि से हुआ। इस लिये दिन का आरंभ भी अर्द्ध रात्रि से माना जाता है। वर्तमान में सारे संसार में अर्धरात्रि से ही दिन का आरम्भ मानते हैं। परंतु विष्णुधर्मोत्तर पुराण, आर्यभट्ट प्रथम, ब्रह्मगुप्त तथा भास्कराचार्य सृष्टि का आरंभ सूर्योदय से मानते हैं। अतः उनके मत के अनुसार सूर्योदय से ही दिन का आरंभ माना जाता है। ये दोनों ही मान्यतायें प्रचलित हैं।

सप्ताह मान

सात सावन दिनों का एक सप्ताह होता है। सप्ताह के दिनों को वार कहते हैं।

सप्ताह के दिनों का नामकरण - आकाशीय तारों, ग्रहों और उपग्रहों में केवल सात ग्रह हमारी पृथ्वी के वायुमण्डल को प्रभावित करते हैं। ये ग्रह हैं, सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुद्ध, बृहस्पति, शुक्र और शनि। सृष्टि का आरंभ सूर्योदय से होता है। इस लिये सप्ताह के पहले दिन का नाम सूर्य के नाम पर रवि रखा गया। वास्तव में दिन के २४ घण्टों में से प्रत्येक घण्टा प्रत्येक ग्रह का माना गया है। इस प्रकार २४ घण्टे बीतने पर पुनः दूसरे दिन का पहला घण्टा चन्द्र से आरम्भ हुआ। अतः दूसरे दिन का नाम सोमवार रखा गया। उपरोक्त क्रम से २४ घंटे पूरे होने पर अगले दिन का पहला घण्टा किस ग्रह से आरंभ हुआ उस ग्रह के आधार पर उस संबन्धित दिन का नाम रखा गया। अतः इस प्रकार सप्ताह के दिनों के नाम सर्वप्रथम भारत में गवेषित हुये और इसी सिद्धांत के अनुसार ये सारे विश्व में प्रचलित हैं।

पक्षमान

पक्षों के दो प्रकार हैं – १. शुक्ल पक्ष और २. कृष्ण पक्ष। एक पक्ष प्रायः १५ दिन का होता है।

मासमान

पृथ्वी के ३६० अंश वाले कक्षा चक्र को १२ भागों में विभक्त किया गया है। इसका अर्थ है कि वर्ष १२ अरों वाला एक चक्र है। १२ अरे १२ मासों के प्रतीक हैं। यह १२ अरों वाला काल चक्र सूर्य का चक्र लगाता है।

अंश वाले कक्षा चक्र को १२ भागों में विभक्त किया गया है। इसका अर्थ है कि वर्ष १२ अरों वाला एक चक्र है। १२ अरे १२ मासों के प्रतीक हैं। यह १२ अरों वाला काल चक्र सूर्य का चक्र लगाता है।

अतः इस तरह ३० अंश का एक महीना हुआ। यह महीना ३० सौर दिनों का बनता है। मासों के निर्माण का कारण पृथ्वी नहीं अपितु चन्द्रमा का पृथ्वी के चारों ओर का परिक्रमण हैं यह ऋग्वेद के अनुसार चन्द्रमा ही मास और अर्धमासों का निर्माता है। चन्द्रमा आकाश में नक्षत्रों को मापता चलता है। इस कारण चन्द्रमा के साथ मापने का भाव जुड़ा है।

मासों का नामकरण

चन्द्रमा का पृथ्वी के चारों ओर का भ्रमण ही पक्षों और महीनों का जनक है। पूर्णिमा से ही मास का अंत होता है। मासों का नामकरण उसी राशि के नक्षत्र के आधार पर किया जाता है जिस राशि में चन्द्रमा पूर्णिमा के अंत में होता है। जैसे चन्द्रमा जब पूर्णिमा के अंत में चित्रा नक्षत्र के योग में होता है तो उस मास का नाम चैत्रमास रखा गया है। पूर्णिमा के समय चन्द्रमा जिस नक्षत्र में होता है सूर्य उसके १८० अंश विपरीत नक्षत्र राशि में होता है। अतः जब सूर्य की संक्रान्ति में अश्विनी नक्षत्र होता है तो चन्द्रमा चित्रा नक्षत्र में होता है। इस कारण मेष की संक्रान्ति वाले महीने का नाम चैत्र कहलाता है।

अयनमान

अयन दो हैं - १. उत्तरायण, २. दक्षिणायान। एक अयन छः मास का होता है।

वर्षमान

पृथ्वी एक लाख कि.मी. प्रति घंटा की गति से सूर्य के गिर्द ६६,६०,००००० कि.मी. लम्बे परिक्रमा पथ पर एक चक्र ३६५.१/४ में पूरा करती है। इस काल अवधि को १ वर्ष की संज्ञा दी गयी है। पृथ्वी की उत्पत्ति से लेकर यह परिभ्रमण का काल लगातार बढ़ रहा है और इसी कारण पृथ्वी का उपरोक्त भ्रमण काल निश्चित नहीं हैं क्योंकि पृथ्वी की सूर्य से दूरी बढ़ती जा रही है। पृथ्वी १०००० वर्ष में सूर्य से १.५ सें.मी. दूर हो जाती है। इस प्रकार १.६ करोड़ वर्ष में पृथ्वी के परिक्रमण का १ घंटा बढ़ जाता है। १६७ करोड़ वर्ष पूर्व पृथ्वी सूर्य के गिर्द घूमने में ३६० दिन लगाती थी। यही कारण है कि उस समय वैदिक ऋषियों ने एक वृत्त को ३६० अंशों में विभाजित किया। अतः कल्प के आरंभ में ३६०

दिनों के महत्व को बनाये रखने के लिये अब भी ३६० दिनों का वर्ष माना जाता है।

वर्ष और वर्ष के पहले दिन का प्रारंभ चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से होता है।

युगमान

५ वर्षीय युग : वर्ष से अधिक अवधि वाली इकाई के लिये चन्द्रमा और सूर्य के एक ही नक्षत्र में होने को आधार बनाया। सूर्य और चन्द्रमा की पांच वर्ष के बाद उसी नक्षत्र में युति होती है। अतः इस प्रकार युगमान का आरंभ पंच वर्षीय युग से हुआ। घनिष्ठा नक्षत्र में चन्द्रमा और सूर्य के मिलने से पंच वर्षीय युग का आरंभ होता है।

१२ वर्षीय युग : युगमान की सीमा को ५ वर्ष से अधिक अविध का बनाने के लिये बृहस्पति को साथ जोड़ा गया है। बृहस्पति को एक अंश के चलन में एक वर्ष का समय लगता है और बृहस्पति एक भगण चक्र को १२ वर्ष में पूरा करता है। इस लिये बृहस्पति के भगण चक्र के १२ वर्ष के काल को युगमान लिया गया। इस प्रकार १२ वर्षीय युग का निर्माण हुआ।

६० वर्षीय युग : युग की अवधि और अधिक बढ़ाने के लिये पांच वर्षीय युग का परिगणन बृहस्पति के संदर्भ में किया गया। बृहस्पति का एक भगण चक्र १२ वर्षों में पूरा होता था और ५ भगण चक्रों का एक युग माना जाता था। भगण चक्रों का काल १२ × ५ = ६० होता है। इस प्रकार युग के मान का क्रमिक विकास तीन चरणों में हुआ। पहले चरण में ५ वर्ष का युग, दूसरे चरण में १२ वर्ष का युग और तीसरे चरण में ६० वर्षों का युग निर्मित हुआ। अश्विनी से आरंभ होने वाले ६० वर्षीय युग का आरंभ काल के आदि से है। परंतु घनिष्ठा से शुरू होने वाले ६० वर्षीय युग का आरंभ ६५ करोड़ ५६ लाख वर्ष के बाद हुआ। जब घनिष्ठा नक्षत्र में सूर्य, चन्द्र की युति के साथ साथ बृहस्पति की युति हुई थी। ऐसी घटना प्रति ६५ करोड़ ५० लाख वर्ष के बाद होती है। ऐसा समय कल्प में ५ बार आता है।

चतुर्युगमान

कल्प के प्रारंभ में पृथ्वी को प्रभावित करने वाले सातों ग्रह- चन्द्रमा, सूर्य, मंगल, बुद्ध, शनि एवं बृहस्पति अपने शर और योग के साथ एक नक्षत्र में थे। उन्होंने जब घूमना शुरू किया तो उनकी प्रथम युति (४३२,००० वर्ष) को कलियुग, दूसरी युति (८ लाख ६४ हजार वर्ष) द्वापर, तीसरी युति (१२,६६,००० वर्ष) त्रेता और चौथी युति (१७,२८,००० वर्ष) को सत्ययुग की संज्ञा दी गयी।

महायुग

उपरोक्त चारों युगों को जोड़ कर महायुग की बड़ी अवधि वाली ईकाई बन जाती है।

मन्वन्तर मान

महायुग से भी लम्बी अवधि की ईकाई के लिये भारतीय कालज्ञानियों ने मन्वन्तर मान का अनुसंधान किया। इस बड़ी अवधि वाले कालमान का आधार सृष्टिक्रम के परिवर्तन और पृथ्वी की ध्रुवता के परिवर्तन में लगने वाले समय को बनाया। सृष्टिक्रम का बदल ३०,८४,४८,००० वर्ष के बाद होता है। इस कालखंड को मनु कहा गया। एक मन्वन्तर में ७१ महायुग + एक सत्ययुग के काल के

बराबर है। अर्थात् ४३,२०,००० × ७१ + १७,२८,००० = ३०,८४,४८,००० इसमें सत्ययुग के १७,२८,००० वर्ष अधिक हैं। वास्तव में सत्ययुग का यह समय मन्वन्तर की मनु संधि कहा जाता है। मन्वन्तर में सत्ययुग का यह समय सृष्टि क्रम को बदलने का कार्य करता है। सूर्य सिद्धांत के अनुसार यह काल मन्वन्तर का जलप्लावन काल है।

सूर्यमण्डल का परमेष्ठी मण्डल के गिर्द का परिभ्रमण काल ३०,६७,२०,००० वर्ष पूरा होता है। यह एक मनु काल है।

कल्पमान

काल की मन्वन्तर से भी अधिक लम्बी ईकाई के लिये परमेष्ठी मण्डल के स्वायम्भुव मण्डल के गिर्द परिभ्रमण को आधार बनाया। यह परिभ्रमण ४,३२,००,००,००० वर्ष में पूरा होता है। इस कालखंड को कल्प की संज्ञा दी गयी। भौगोलिक दृष्टि से एक कल्प १४ मन्वन्तर और १५ मनु सन्धि कालों के जोड़ से बनता है। यहां पर यह भौगोलिक तथ्य खगोलीय तथ्य के समान है। यथा ३०,६७,२०,००० × १४ + १७२८,००० × १५ = ४,३२,००,००,००० वर्ष।

महाकल्प

अब इस अद्भुत विश्व के अभिकल्पक श्री ब्रह्मा जी काल गणना के अंतिम चरण में आ जाते हैं। एक कल्प ब्रह्मा की आयु का एक दिन होता है और रात्रि भी उतनी ही होती है। अर्थात् –

ब्रह्मा दिन = एक कल्प	= ४,३२,००,००,००० वर्ष
ब्रह्मा रात्रि = एक कल्प	= ४,३२,००,००,००० वर्ष
ब्रह्मा का संपूर्ण दिन	= ८,६४,००,००,००० वर्ष
ब्रह्मा का एक मास	= ८,६४,००,००,०००×३० = २,५९,२०,००,००,००० वर्ष
ब्रह्मा का एक वर्ष	= २,५९,२०,००,००,०००×१२
	= ३१,१०,४०,००,००,००० वर्ष
ब्रह्मा की सम्पूर्ण आयु	= ३१,१०,४०,००,००,०००×१००
	= ३१,१०,४०,००,००,००,००० वर्ष

अतः इस प्रकार ब्रह्मा की संपूर्ण आयु (ब्रह्माण्ड की आयु) काल की महानतम और अंतिम इकाई महाकल्प का का काल मान है।

दूसरे प्रकार से महाकल्प की गणना –

ब्रह्मा का एक दिन	=	१ कल्प
ब्रह्मा की एक रात्रि	=	१ कल्प
ब्रह्मा का पूरा दिन	=	२ कल्प
ब्रह्मा का एक मास	=	६० कल्प

ब्रह्मा का एक वर्ष	=	७२० कल्प
ब्रह्मा की संपूर्ण आयु	=	७२,००० कल्प
	=	४,३२,००,००,००० × ७२,०००
	=	३१,१०,४०,००,००,००,००० वर्ष

महाकल्प का महाप्रलय

श्रीमद्‌भगवद् गीता के अष्टम अध्याय के श्लोक १७ से २४ तक सृष्टि चक्र को समझाते हुये भगवान कृष्ण कहते हैं –

"हे अर्जुन! ब्रह्मा का जो एक दिन है, उसको १००० चौकड़ी युग तक अवधि वाला और रात्रि को भी १००० चौकड़ी युग तक अवधि वाला जो पुरुष तत्व से जानते हैं वे योगी काल के तत्व को जानने वाले हैं।

सम्पूर्ण दृश्टयमान भूतगण ब्रह्मा के दिन के प्रवेश काल में ब्रह्मा के सूक्ष्म शरीर से उत्पन्न होते हैं और ब्रह्मा के रात्रि के प्रवेश काल में उस अव्यक्त नामक ब्रह्मा में लय हो जाते हैं। इसी रूप में भूत समुदाय प्रकृति के वश में हुआ रात्रि के प्रवेश काल में लय होता है और दिन के प्रवेश काल में फिर उत्पन्न होता है। हे अर्जुन! इस प्रकार ब्रह्मा के १०० वर्ष पूर्ण होने पर ब्रह्मा भी अपने लोक सहित शान्त हो जाते हैं।" यही महाकल्प का प्रलय है। कालक्रम में सर्वशक्तिमान ईश्वर की प्रेरणा से विश्व के महाभिकल्पक अपनी शान्ति को समाप्त कर फिर जाग कर सक्रिय होते हैं। फिर ब्रह्माण्ड की रचना होती है और उसके किसी ग्रह पर पुनः मानव सृष्टि होती है। इसी प्रकार यह सृष्टि चक्र आदि काल से सतत रूप से चलता आया है।

सन्दर्भ :

१. विश्व की काल यात्रा
२. भारतीय काल गणना की रूपरेखा
३. भारतीय कालगणना का वैज्ञानिक एवं वैश्विक स्वरूप
४. श्रीमद्‌भगवद् गीता

भारतीय इतिहास शास्त्र एवं कालक्रम

शास्त्र का अर्थ वह ग्रन्थ है जो प्रमाण और विज्ञान की कसौटी पर खरा उतरे। शास्त्रीय प्रमाण का विशेष महत्त्व है क्योंकि शास्त्रीय बातें विज्ञान की आधारशिला पर नपी-तुली एवं प्रमाणिक होती है।

इतिहास एक शास्त्र

भारतीय चिंतन परम्परा में इतिहास कला नहीं है प्रत्युत वह विज्ञान और शास्त्र है। इतिहास को शास्त्र की संज्ञा दी गयी है। इस के कारण निम्नलिखित हैं –

1. प्रथम और महत्वपूर्ण कारण यह है कि इतिहास की विषय वस्तु प्रकृति के अथवा सृष्टि के इतिहास से आरम्भ होती है। सृष्टि का इतिहास एक विज्ञान सम्मत इतिहास है। इसी कारण इतिहास को शास्त्र की संज्ञा दी गई। यही कारण है कि इतिहास पुराण को पंचम वेद भी कहा है – **'इतिहासपुराणं पंचमो वेदः'**। वेद भी सृष्टि की उत्पत्ति एवं विकास के विज्ञान का नाम है। अतः कहा गया है कि इतिहास-पुराण से वेद का उपवृंहण अर्थात् व्याख्या करें।

'इतिहास पुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्'

2. इतिहास का दूसरा प्रतिपाद्य विषय है पृथ्वी पर मानव की उत्पत्ति एवं उसका प्रसारण। यही कारण है कि मानव वंश परम्परा पुराणों में प्रतिपादित की गयी। कालक्रम में मानव संघों का निर्माण होने पर सामाजिक संकल्पनाओं का जन्म हुआ एवं अन्ततः समाजविस्तार के कारण राजनैतिक अवधारणाओं तथा समीकरणों का विकास हुआ। इसलिए राजनैतिक इतिहास लेखन भारतीय इतिहास शास्त्र की लेखन परम्परा में अंतिम बिन्दु था।

इतिहास का उद्देश्य

भारतीय इतिहास शास्त्र की अवधारणा के अनुसार इतिहास का अंतिम उद्देश्य मानव कल्याण है। इसीलिए कहा गया है कि इतिहास संस्कृति का संवर्द्धक और धर्म का पोषक होना चाहिए। उद्देश्य संबन्धी इन बातों को ध्यान में रखते हुए भारतीय इतिहास लेखन में राष्ट्रजीवन के सामाजिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक तथा राजनीतिक आदि सर्वपक्षों के इतिहास का सर्वांगीण चित्र प्रस्तुत करना अपेक्षित है।

इतिहास लेखन की उपरोक्त अवधारणा के कारण भारत में इतिहास लिखने के जो अनेक प्रकार विकसित हुए हैं उनका विवरण निम्नलिखित हैं –

१. **इतिहास** : 'इति ह वै आस' इतिहास की यह व्याख्या वैदिक साहित्य में की गई है, परन्तु

ऋषि शौनक अपने ग्रन्थ 'वृहद्देवता' में इसे और भी स्पष्ट करके लिखते हैं –'ऋषियों द्वारा कही गयी बात इतिहास है।'

२. पुराकल्प : पूर्व कल्पों की घटना का वर्णन।

३. पुरावृत्त : पूर्व के मन्वन्तर की घटना का विवरण।

४. आख्यान : आख्यान का अर्थ है लोक परम्परा में विश्रुत 'प्रकृति' अथवा 'समाज' का इतिहास। देवासुर संग्राम के विषय में जो आख्यान है वह भी इतिहास है। कोई समाचार पत्र प्रतिनिधि भारत-पाक युद्ध भूमि से युद्ध देख कर आता है और बताता है कि किस प्रकार भारत युद्ध में विजयी हुआ तो वह और इस प्रकार का कथन भारतीय लेखक इतिहास ही मानते हैं।

५. उपाख्यान : किसी मुख्य कथा के साथ संबन्धित दूसरी कथा।

६. ऐतिह्य : परम्परागत कथन को कहते हैं। यह इतिहास के कथन का एक ढंग है।

७. परिक्रिया : यह भी पूर्वकाल की बात को कहने की पद्धति है। किसी एक नायक या विषय वस्तु को लेकर लिखे गये इतिहास को परिक्रिया कहते हैं। परिक्रिया अर्थवाद है। जब कोई वाक्य किसी घटना अथवा वार्तालाप का प्रयोजन बताने के लिए कहा जाए तो वह अर्थवाद कहलाता है। इसी श्रेणी के वाक्यों में परिक्रिया है। अतः यह भी इतिहास का एक प्रकार है।

८. परकृति : वायुपुराण (५६.१३६) में इसका उल्लेख है। किसी दूसरे व्यक्ति द्वारा कहे गये इतिहास को जब कोई अन्य व्यक्ति सुनाता है तो ऐसा इतिहास परकृति कहलाता है।

६. इतिवृत : किसी पुस्तक, नाटक अथवा लेख का संक्षेप इतिवृत कहलाता है। यह प्रायः पुस्तकों के पूर्व पृष्ठों में दिया जाता है।

१०. अनुचरित : किसी बड़ी कथा का संक्षिप्त विवरण।

११. अनुवंश : एक वंश का इतिहास लिखने अथवा कहने के समय उसकी किसी शाखा का आरंम्भ कर दिया गया तो वह अनुवंश होता है।

१२. कथा : एक मुख्य बात का वर्णन।

१३. परिकथा : कथा से संबन्धित दूसरी कथा। यथा महाभारत में श्रीकृष्ण जब युधिष्ठिर को जरासंध को पराजित करने की प्रेरणा देते हैं तो वह उस समय जरासंध की कथा सुनाते हैं। अथवा जब भीष्मपितामह कृष्ण को राजसूय यज्ञ की सभा का प्रमुख बनाते हैं तो कृष्ण की कथा कहते हैं।

१४. गाथा : गाथा और कथा में अन्तर होता है। कथा में तो मुख्यपात्र का वर्णन होता है; परन्तु किसी एक की कथा से किसी दूसरे की कथा कहने लगें तो वह गाथा होती है।

१४. अन्वाख्यान : किसी द्वारा कहे गए इतिहास को उद्धृत करना।

१६. चरित : समाज में आदर्शभूत लोगों का चरित वर्णन।

१७. नाराशंसी : समाज में विशिष्ठ योगदान देने वाले लोगों की विशिष्टता का वर्णन।

१८. कालविद् : काल के इतिहास के ज्ञाता।

१६. गोत्र-प्रवरकार : प्रारम्भिक गोत्रों की उत्पत्ति तथा विस्तार का लेखा-जोखा रखने वाले लोग।

२०. **राजशासन :** राजनैतिक इतिहास का लेखन।

२१. **पुराण :** वंश, मन्वन्तर, सर्ग, प्रतिसर्ग, वंशानुचरित की ऐतिहासिक सामग्री का वृत्तान्त।

२२. **आख्यायिका :** श्रवण परम्परा में प्राप्त इतिहास।

भारत के प्राचीन साहित्य में उपरोक्त सब प्रकार और कुछ अन्य भी प्रकार थे जिन में इतिहास कहा जाता था और वह कहा हुआ मिलता है। भारतीय लेखन की विशेषता यह है कि ये सब प्रकार उस समय भी प्रयुक्त होते थे जब कि किसी श्रेष्ठ लिपि की कल्पना भी नहीं हुई थी। तब से प्रचलित ये प्रकार आज भी मिलते हैं। इन प्रकारों पर बड़े-बड़े शोध ग्रन्थ मिल रहे हैं। इतिहास लेखन के इतने प्रकारों से स्पष्ट होता है कि भारत में इतिहास का बड़ा महत्त्व रहा है।

इतिहास और काल

हिरण्यगर्भ के विस्फोट द्रव्य से सर्वप्रथम काल की स्थापना के बिन्दु से ही भारतीय इतिहास का श्रीगणेश होता है। काल और इतिहास साथ-साथ प्रवाहित होने वाली दो धारायें थीं। काल इतिहास का नियन्त्रण कर रहा था और इतिहास काल पर आधारित था। एक के अभाव में दूसरे का अस्तित्व असंभव है। अतः काल और इतिहास में बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव है; काल बिम्ब है तो इतिहास उसका प्रतिबिम्ब। इसी कारण जो काल है वही इतिहास है और जो इतिहास है वही काल है।

काल के तत्त्व-चिन्तन की उपरोक्त वैज्ञानिक अवधारणा के अभाव में पृथ्वी के गत् १९७ करोड़ वर्षों से भी अधिक काल के इतिहास को समझना तो कठिन है ही, परन्तु उसका लेखन भी संभव नहीं है। पश्चिम की परम्परा में प्रारम्भ से ही काल की अवधारणा अस्पष्ट रही है। यूनान जिसको यूरोप की सभ्यता, संस्कृति और इतिहास का पिता कहा जाता है, वहां काल के तत्त्व-चिन्तन का सदैव अभाव रहा है। इसी कारण वहां का ईसा के पूर्व को जो प्रायः २००० वर्षों का इतिहास है उसे वहां के इतिहासकार केवल दो सौ या तीन सौ वर्षों का ही बताते हैं। यूनान के ४०-५० वर्ष के दस्तावेजों पर कोई तिथियां नहीं है। काल का बिन्दू निश्चित करने के लिए संख्यात्मक संकेतों की आवश्यकता पड़ती है। इनका वहां अभाव है। परिणामतः यूनान के किसी भी गणितज्ञ को आज भी यदि १ अरब की संख्या लिखने के लिए कहा जाये तो वह इसके लिए काफी समय लेगा, परन्तु एक भारतीय तत्क्षण लिख देगा। इसी कारण वहां की मूर्तियां अन्धी बनाई गई हैं। अनंत का रंग नीला हैं, परन्तु वहां की मूर्तिकला में इसका कहीं भी दर्शन नहीं होता है।

जो स्थिति पिता (यूनान) की है वही सन्तानों (यूरोप) की है। यूरोप की परम्परा में भी काल के तत्व-चिन्तन का अभाव रहा है। वहाँ का इतिहास बाईबल की मिथ्या धारणा कि विश्व की उत्पत्ति ६००० वर्ष पूर्व हुई, से ग्रस्त है। अतः पृथ्वी के जन्म से लेकर आज तक मानवीय संस्कृति का इतिहास वहाँ केवल ६००० वर्ष का है। वहां के इतिहास का कालक्रम ईसा से पूर्व और ईसा के बाद के कालक्रम पर आधारित है। यह गणना ईसा के पूर्व के ४ या ५ हजार वर्षों के इतिहास का लेखन तो कर सकती है परन्तु इस ग्रह अर्थात् पृथ्वी के करोड़ो वर्षों के इतिहास का लेखन इसके लिए कठिन ही नहीं अपितु असंभव है क्योंकि अस्तित्व ही मात्र २००० वर्ष का है।

यूरोप को गिनती भारत ने सिखाई

१४ वीं शताब्दी तक यूरोप को गिनती करनी नहीं आती थी। भारत ने यूरोप को गिनती करनी उस समय सिखाई जब उसके गणित ने वहां की यात्रा मानव कल्याणार्थ की।

भूत और वर्तमान के ज्ञान का अभाव

उपरोक्त गिनती विद्या की जानकारी न होने के अतिरिक्त भूत और वर्तमान के ज्ञान का भी वहाँ १७ वीं शताब्दी तक अभाव था। १८ वीं शताब्दी में जब भारत की विद्याओं ने वहाँ के विद्यापीठों में प्रवेश किया जो वहाँ उनके तुलनात्मक अध्ययन से वहाँ भूत और वर्तमान की अवधारणा का स्पष्ट ज्ञान हुआ।

इतिहास और विज्ञान

भारतीय चिन्तन-दर्शन के अनुसार इतिहास कला नहीं, विज्ञान है। भारत के खगोलशास्त्रियों ने काल और इतिहास के सर्पिल वृत्त की छोटी और बड़ी गति चक्रक्रम पर पूर्णतः बड़ी गम्भीरता के साथ विचार किया और वह युग, महायुग, कल्प और महाकल्प के कालक्रम में विभाजित है। इतिहास काल के क्षरक्रम की एक लघुतम प्रक्रिया है जिसे हम चार-पांच हजार वर्षों के न्यूनतम मात्रक से जान सकते हैं। संपूर्ण उसकी सीमा से सर्वथा परे है। वह कालतत्त्व का विज्ञान है। भारत के मनीषियों ने सदैव संपूर्ण के ही संदर्भ में सोचा है। वहां खंड जैसा कोई तत्त्व नहीं है। परिणामतः इतिहास भी काल के साथ संपूर्ण की सीमाओं तक पहुंच कर स्वयं विज्ञान बन गया है। युग, महायुग, मन्वन्तर और कल्पादि उसी काल के आधार अस्तित्व में उतर कर इतिहास दर्शन की ही एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है। जहां काल और इतिहास की युति हो जाती है।

इतिहास — History - Historiography

इतिहास शब्द अंग्रेजी शब्द History का अनुवाद नहीं है। अपितु वह अति वैज्ञानिक है। Inquiry अर्थात् खोज, पूछ-ताछ। यह अर्थ संभावनामूलक है। Historiography का अर्थ इतिहास लेखन है, इतिहास शास्त्र नहीं। इसमें विनिश्चिय न होने के कारण यह सिद्धान्त की सीमाओं तक पहुंचने में असमर्थ है। इसके विपरीत इतिहास शब्द का अर्थ संभावनामूलक न होकर विनिश्चियात्मक है। यह तीन पदों से बना है - **'इति - ह - आस'**; **'इति'** इस प्रकार व 'ऐसा', **'ह'** का अर्थ है 'निश्चित'; **'आस'** - का अर्थ है। 'था' - अर्थात् ऐसा निश्चित हुआ था। अतः इतिहास शब्द को History के साथ में प्रयुक्त करना भारतीय इतिहास के साथ अन्याय होगा। इतिहास शास्त्र के अनुसार इतिहास वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित है। इसमें सर्वप्रथम पृथ्वी के १९७ करोड़ वर्षों का इतिहास वहां युग विभाजन के अनुसार प्रस्तुत किया गया है। पाश्चात्य जगत में इस दृष्टि से किए गए वर्तमान तक के सारे प्रयत्न अपूर्ण है। गत १००-१५० वर्षों के वैज्ञानिक अनुसंधानों पर आधारित अन्वेषण अधूरे ही नहीं अपितु कई प्रकार के मतभेदों और विसंगतियों से ग्रस्त हैं।

जहां तक मानवीय संस्कृति के इतिहास का प्रश्न है, वर्तमान पाश्चात्य हिस्ट्री की दृष्टि केवल ६००० वर्षों तक ही जा सकी है। परन्तु यह भी ईसा के पूर्व कालखंड में जाकर धुन्धली हो जाती है।

ऐसी अवस्था में पृथ्वी के गत १९७ करोड़ वर्षों के इतिहास की रचना की प्रक्रिया का महत्त्व ऐतिहासिक और वैज्ञानिक दृष्टि से अत्यन्त बढ़ जाता है। भारत के अतिरिक्त विश्व की अन्य प्राचीन संस्कृतियों ने इस दिशा में कोई प्रयास नहीं किया है। Historical कहलाने वाली पश्चिम सभ्यता के पास १७वीं शताब्दी के अन्त तक ऐसी कोई कल्पना नहीं थी। उसकी दृष्टि में पृथ्वी के जन्म से लेकर अब तक का इतिहास केवल ६००० वर्षों का है। परन्तु भारतीय संस्कृति के अनुसार ईसा से बहुत पूर्व विश्व की उत्पत्ति की तिथि १० अरब ६१ करोड़ वर्ष सुनिश्चित है।

प्राचीन भारतीय इतिहास की विवेच्य सामग्री

वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित होने के कारण भारत के इतिहास का आरम्भ सृष्टि चक्र के गतिमान होने के साथ होता है। अतः इसकी विवेच्य सामग्री अत्यन्त प्राचीन है। इसी कारण इसका सर्वप्रसिद्ध नाम 'पुराण' है – **''यस्ममात पुरा ह्येतच्च तत् पुराणं तेन तत्स्मृतम्''** (ब्रह्माण्ड पुराण १-१-१७) अर्थात् प्राचीन काल में जैसा हुआ था इस अर्थ में पुराण है। पुराण व प्राचीन इतिहास के ५ लक्षण स्थिर किये गये हैं। इतिहास की इस संपूर्ण सामग्री को ५ विभागों में विभक्त कर दिया गया है - १. सर्ग; २. प्रतिसर्ग; ३. मन्वन्तर; ४. वंश; ५. वंशानुचरित –

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पंचलक्षणम्।

यह श्लोक प्रायः सभी पुराणों में पाया जाता है। इन पांच लक्षणों में से प्रथम ३ का सीधा संबन्ध विज्ञान से है। शेष २ मानवीय इतिहास प्रधान हैं।

१. सर्ग : सर्ग का संबन्ध सृष्टि के क्रमिक विकास और इतिहास से है।

२. प्रतिसर्ग : का सम्बन्ध विश्व के प्रलय के साथ है। सृष्टि के संरचनात्मक और ध्वंसात्मक स्वरूप को समझे बिना विश्व के विकास और इतिहास को समझना संभव नहीं है। क्योंकि संरचनात्मक विकास के प्रत्येक बिन्दु पर सृष्टि और विनाश का चक्र सदैव चलता रहता है। यदि किसी संस्कृति में विज्ञान अभी उन्नत अवस्था में है तो उसका इतिहास भी विज्ञान के साथ बनता जायेगा। वह विज्ञान से पृथक नहीं था। यह विज्ञान का रूप धारण कर सृष्टि कालचक्र को प्रारम्भ से ही अपनी विषय वस्तु बना लेता है। यही सत्य भारत के पौराणिक इतिहास चिन्तन के साथ सर्वत्र रहा है।

३. मन्वन्तर : यह पौराणिक इतिहास का तीसरा विषय है। इसका संबन्ध पृथ्वी के ४ अरब ३२ करोड़ वर्षों के इतिहास से है। यह इतिहास युगात्मक है। पृथ्वी के इस सम्पूर्ण इतिहास को १४ मन्वन्तरों में बाँटा है। इसमें पृथ्वी के भावी दो अरब वर्षों से अधिक के इतिहास का भी समावेश है।

४. वंश : यह चौथा लक्षण है। मानव सृष्टि का युगात्मक इतिहास मन्वन्तरों में विभक्त है। मानव-पोषण और जीवन यापन करने के सभी पक्षों का इतिहास वंश का प्रधान विषय है।

५. वंशानुचरित : इस पांचवें लक्षण में यह विचार किया गया है कि किस मन्वन्तर के किस महायुग में मानव वंश का विकास और विस्तार किस प्रकार कहाँ और कितना हुआ था। वंशानुचिरत के इतिहास का यहीं मुख्य विषय है।

काल के लम्बे प्रवाह में जैव विकास का स्वरूप अनेक बार बदलता है। अनेक बार वह रुक

जाता है। फिर उसका नया आरम्भ और विकास, काल के अनुसार होता रहता है। इतिहास तत्व का दिग्दर्शन वंश और वंशानुचरित का प्रधान विषय है। अतः यह दोनों विषय-वैज्ञानिक न होते हुए भी इससे अप्रत्यक्ष संबन्ध रखते हैं। विज्ञान-चिन्तन के अभाव में लगभग २ अरब वर्षों के इतिहास में वंश और वंशानुचरित का विवेचन करना ही संभव नहीं है।

इतिहास और साहित्य

प्रारम्भ में साहित्य लेखन की विधा का विकास इतिहास पर आधारित था। कालक्रम में भारतीय इतिहास के विभिन्न आख्यान एवं उपाख्यान ही साहित्य लेखन के उपजीव्य बने। नाटक, काव्य, उपन्यास आदि साहित्य इतिहास से ही प्रभावित और प्रेरित है। आचार्य भरत के अपने नाट्यशास्त्र में लिखा है कि **'काव्य का विषय ऐतिहासिक होना चाहिए** तथा **वर्ण्यवस्तु एवं विषय प्रख्यात होना चाहिए।'** (नाट्यशास्त्र-आचार्यभरतकृत)

भारत और पश्चिम की इतिहास परम्परा

सृष्टि रचना के प्रारम्भ में ही इतिहास शास्त्र की स्थापना श्री ब्रह्माजी ने की। काल की अवधारणा, सूर्यकेन्द्रित विश्व और विश्व मानव की सैद्धान्तिक जानकारी विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद से मिलती है। 'अस्यवामीय सूक्त' और पुरुष सूक्त' उसके ऐतिहासिक उदाहरण हैं। भारतीय इतिहास शास्त्र के अनुसार विश्व के प्राचीन इतिहास की जानकारी भारतीय धर्म, दर्शन और विज्ञान के तत्वचिन्तन से मिलती है। अतीत की स्मृति से ही वर्तमान के इतिहास का श्रीगणेश होता है। सृष्टि के प्रारम्भ अर्थात् वैदिक युग से ही इतिहास श्रौतयागों के साथ जुड़ा रहा है। इतना ही नहीं अपितु इतिहास अपने देश भारत के सामाजिक, धार्मिक अनुष्ठानों के साथ अंगाङ्गिभाव से विजड़ित रहा है। इसी कारण महाभारतकार ने इसे **'पंचम वेद'** कहा है।

इतिहास के उपरोक्त महत्त्व के ही कारण संपूर्ण भागवत को सुनाने के पश्चात भगवत्पाद श्रीशुक परीक्षित को स्वायम्भुव मन्वन्तर से लेकर तब तक के १ अरब ९५ करोड़ वर्षों के इतिहास को वर्णित करते हुए उसका महत्त्व, उद्देश्य स्पष्ट करते हैं। जो भारतीय संस्कृति में इतिहास के लक्षणभूत उद्देश्य और उसकी परम उपयोगिता के तात्विक संदर्भ को उजागर करता है – ''परीक्षित! इस लोक में बड़े-बड़े महान पुरुष हो चुके हैं, जो इस पृथ्वी पर अपने तेज और यश का विस्तार करके चले गए। उनकी यह इतिहास-कथा मैंने तुम्हें विज्ञान और वैराग्य की प्राप्ति के लिए सुनाई हैं। इसे तुम वाणी का वैभव और विलास मात्र न समझो। इन में जीवन का परम अर्थ और तत्त्व समाहित है –

कथा इमास्ते कथिता महीयसां
विताय लोकेषु यशः परेयुषाम्।
विज्ञानवैराग्यविवक्षया विभो
वचोविभूतीर्न तु पारमार्थ्यम्।। भागवत

इससे स्पष्ट है कि भारत में प्रारम्भ से ही विज्ञान, आध्यात्मिक ज्ञान और वैराग्य प्राप्ति के लिए इतिहास का अध्ययन किया जाता रहा है। इसी कारण पौराणिक इतिहास में विज्ञान-चिन्तन के अनेक प्रसंग मिलते हैं। इनमें सृष्टि और प्रलय के स्वरूप का पूर्णतः विचार किया गया है। पुराणों के

इतिहास में पांच लक्षणों में से प्रथम दो लक्षणों—सर्ग, प्रतिसर्ग का सीधा संबन्ध-विचार से है और शेष ३ का इतिहास से।

पश्चिम की इतिहास परम्परा

पाश्चात्य जगत की परम्परा में शुरु से ही काल के तत्व-चिन्तन का अभाव रहा है और आज भी है। इस कारण यहां का इतिहास कब्रों, पिरामिडों, भग्नावशेषों, मूर्तियों, प्रतिमाओं, संग्रहालयों और जीवाश्मों के साथ जुड़ा है, क्योंकि उनके पास २००० वर्षों के पूर्व का कुछ भी लिखित नहीं है। १७ वी शताब्दी में जीवाश्म-विज्ञान शास्त्र की स्थापना हुई और मानवी हड्डियों के 'सेम्पलसर्वे' के आधार पर पृथ्वी के पुराने इतिहास की खोज आरम्भ हुई। जिस प्रकार हड्डियां मिलती गयी, उसी प्रकार अतीत का अन्दाज भी लगता रहा। यह प्रमाण की निश्चित की तर्क और विज्ञान सम्मत पद्धति नहीं है क्योंकि जहां तक मानवी अस्थियों का अस्तित्व है, वहीं तक ऐतिहासिक काल की सीमा है। जहां तक मानवी हड्डियों के टुकड़े मिलते हैं, वहीं तक उनके वैज्ञानिक चिन्तन की सीमा स्थिर हो जाती है। परन्तु जब पुनः ऐसी हड्डियां मिलती हैं जो पूर्व के सेम्पल सर्वे से अधिक पुरानी होती हैं तो पूर्व के सभी अन्दाज और सीमायें बदल जाती है। भौतिक नृतत्वशास्त्र का भी यही इतिहास है।

उपरोक्त मृतकों के प्रतीकवाद के पास भविष्य दर्शन की कोई योजना नहीं है। यूरोप के वैज्ञानिकों ने पृथ्वी की जीवनधारा के इतिहास को जिस प्रकार अस्थियों के 'सेम्पलसर्वे' के आधार पर अनेक रूपों में सजाया है। वहां के इतिहासकारों ने भी उसी आधार पर वहां के इतिहास को रूपक अंलकारों में सजाया है, यथा— पाषाणयुग, धातुयुग, ताम्रयुग, स्वर्णयुग आदि-आदि। इन नामों का अर्थ उनके रूपकों की सीमा तक है। काल, जो ब्रह्माण्ड को व्याप्त करता है, उसके साथ संबन्ध नहीं हैं। इसी प्रकार उन्होंने इतिहास का शाब्दिक युग-विभाजन भी किया है जैसे Ancient, Medieval and Modern वास्तव में काल का प्रत्येक खंड अपने ऐतिहासिक क्रम में Ancient, Medieval और Modern होता है।

पश्चिम की इतिहास परम्परा बाईबल के धार्मिक विश्वास से ग्रस्त और संस्कारित है। वहां न तो काल की अवधारणा है और न ही इतिहास की दीर्घदृष्टि। वहां विश्वोत्पत्ति, सृष्टिरचना और अतीत की वैज्ञानिक खोज का अभाव है। प्रसिद्ध इतिहासकार काल यास्पर्श कहते हैं कि पश्चिम के इतिहास दर्शन की स्थापना ईसाई धर्म पर आधारित है। प्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक हीगल कहते हैं कि पश्चिम के इतिहास का उद्भव और विस्तार ईसा से संबन्धित है।

पश्चिम की उपरोक्त इतिहास-दृष्टि का यह परिणाम था कि यूरोप के १७ वीं शताब्दी के सारे इतिहासकारों का यह विश्वास था कि यह पृथ्वी ६००० वर्ष पहले बनी। कार्लमार्क्स के गुरु इतिहास के प्रसिद्ध विद्वान शेलिंग का यह विश्वास था कि पृथ्वी का जन्म ६००० वर्ष पहले हुआ। कुछ अपवादों को छोड़ कर १७ वीं शताब्दी के वैज्ञानिकों की भी स्थिति उस समय के इतिहासकारों जैसी ही थी। प्रसिद्ध वैज्ञानिक कैपलर की यह मान्यता थी कि पृथ्वी ६००० वर्ष पूर्व बनी। Newton के मतानुसार विश्व का निर्माण ५० हजार से १ लाख वर्ष के मध्य हुआ था। कुछ वैज्ञानिक तो Newton

के समर्थक थे परन्तु कुछ डार्विन के साथ थे जिनका विश्वास था कि पृथ्वी की आयु १०-१२ लाख वर्ष है।

वैज्ञानिक Helmhotlz ने अपने अनुसंधान में पृथ्वी की आयु १ करोड़ ७० लाख वर्ष घोषित की, परन्तु उस समय के विज्ञान को यह मान्य नहीं था और यूरोप में उनका भयानक विरोध हो रहा था। ऐसी स्थिति में भारत की वैज्ञानिक और ऐतिहासिक स्थापनाओं—विश्वोत्पत्ति तिथि ईसा के पूर्व १० अरब ६० करोड़ वर्ष, पृथ्वी श्वेतवाराह कल्प का आरम्भ १ अरब ६७ करोड़ वर्षों का काल, युग, महायुग की गणना के सिद्धान्त को पश्चिम के इतिहासकारों और वैज्ञानिकों ने मिथक और कल्पना-विलास मान लिया। इतना ही नहीं इन स्थापनाओं से सम्बन्धित भारतीय साहित्य, दर्शन, विज्ञान को एक आधारहीन कल्पना की उडान मात्र समझा गया। जब कैपलर, Newton, डार्विन जैसे वैज्ञानिक पश्चिम के प्रमुख इतिहासकार और मैक्समूलर जैसे विद्वान आधारहीन, गतसार एवं अवैज्ञानिक मान्यताओं के साथ चिपके हुए थे, तब हमारे प्राचीन देश के प्राचीन इतिहास और विद्वान-चिन्तन का ऐसा अपमान होना ही था। उस समय के विज्ञान को न तो 'Big Bang' के १० अरब वर्षों के कालमान की जानकारी थी; न 'यूरोनियम-डेटिंग द्वारा पृथ्वी की ४ अरब ५० करोड़ वर्ष आयु का अन्दाजा था, न प्रोटीन स्ट्रक्चर से प्राप्त मानवीय उद्‌भव के ७ करोड़ वर्षों के काल की सोच उपलब्ध थी।

आश्चर्य की बात है कि गत १०० वर्ष के वैज्ञानिक अनुसंधानों और आविष्कारों के परिणामस्वरूप पश्चिम के वैज्ञानिक तो अपनी १७वीं, १८वीं और १६ वीं शताब्दी की भ्रांतधारणाओं का सुधार करते-करते भारतीय इतिहास की विज्ञान - दृष्टि के निकट पहुंच गए हैं, परन्तु पश्चिम के इतिहासकार और उनके भारतीय अनुयायी अपनी हठधर्मिता के कारण अभी तक १८वीं, १६ वीं शताब्दी की भ्रांत मानसिकता से ही ग्रस्त हैं।

भारतीय इतिहास शास्त्र की विशेषता

१. सृष्टि (प्रकृति) का इतिहास

पाश्चात्य इतिहास की परम्परा में प्रकृति का इतिहास मान्य नहीं है। परन्तु प्रकृति का इतिहास वैज्ञानिक विषय है और भारतीय परम्परा में प्रकृति और मानव सृष्टि इन दोनों का इतिहास लेखन अनिवार्य है। यही भारतीय इतिहास शास्त्र की अन्य पूर्व उल्लिखित विशेषताओं में प्रमुख विशेषता है। भारतीय ऐतिहासिक परम्परा के अनुसार इतिहास के आरम्भ का प्रथम बिन्दु हिरण्यगर्भ है और दूसरा उच्चतम बिन्दु 'नर' है जहां पहुंच कर प्रकृति का अवांतर विकास बंद हो जाता है। मानवसृष्टि काल की स्थापना के लाखों वर्षों के बाद तक होती है जब 'नर' की उत्पत्ति के साधनभूत सारे आयाम पूर्ण हो जाते हैं। अतः भारतीय इतिहास शास्त्र की मान्यतानुसार प्रकृति और मानव सृष्टि इन दोनों का इतिहास लेखन अपेक्षित है। काल की अवधारणा न होने के कारण पाश्चात्य जगत् की इतिहास - परम्परा में प्रकृति का इतिहास स्वीकार नहीं है। इतिहास की वैज्ञानिक दृष्टि से दोनों बिन्दुओं से संबन्धित इतिहास का लेखन भारतीय परम्परा में आवश्यक है।

२. भारतीय इतिहास शास्त्र मिथक प्रधान नहीं विज्ञान प्रधान है

पश्चिम में इतिहास अवधारणा कभी भी स्पष्ट नहीं रही और आज भी नहीं है। इतिहास की तत्त्व दृष्टि काल के तत्त्वदर्शन पर आधारित है। इसकी अवधारणा के बिना इतिहास को समझना संभव नहीं है। यूरोप के पास कालचिन्तन का सदैव अभाव रहा है। यही कारण है कि यूनान के इतिहास चिंतक अपने देश के ईसा पूर्व के २००० वर्ष के इतिहास को कुछ सौ, दो सौ वर्ष का ही समझते रहे। किसी भी संस्कृति में उसकी धर्मदृष्टि ही उस संस्कृति की इतिहास-दृष्टि बनती है और वही आगे चलकर दर्शन और चिन्तन के रूप में स्थापित होती है। यही सत्य यूरोप और भारत के इतिहास और इतिहासकारों के साथ भी है। बाइबल की आवधारणा पर आधारित ईसाई धर्म दृष्टि में इस पृथ्वी की उत्पत्ति ६००० वर्ष पूर्व हुई थी। उसके पूर्व कुछ भी नहीं था। यही ईसाई धर्म-दृष्टि यूरोप की इतिहास-दृष्टि बनी और वहीं आगे चल कर यूरोप के दर्शन और चिन्तन के रूप में प्रशस्त हुई। विश्वोत्पत्ति की ६००० वर्ष पूर्व की यह अवधारणा काल्पनिक, सिद्धान्त विहीन और अवैज्ञानिक है क्योंकि अशर नाम के पादरी ने १६ वीं शती में बिना किसी आधार के एक मिथ्या घोषणा की कि ईसा के ४००० वर्ष पूर्व विश्व की उत्पत्ति हुई। यही मिथक आगे चलकर यूरोप के इतिहास का तत्त्व - चिन्तन बन गया।

१७ वीं शताब्दी के अन्त तक यूरोप के समस्त इतिहासकारों और कुछ अपवादों को छोड़ कर प्रायः सभी वैज्ञानिकों का यह विश्वास था कि विश्वोत्पत्ति ६००० वर्ष पूर्व हुई थी। उसके पूर्व के काल को अनैतिहासिक घोषित कर दिया। १८वीं और १६ वीं शताब्दी में यूरोप प्रायः सारे विश्व पर छाया हुआ था। हमारे देश में भी अंग्रेजों का राज्य था। अतः यूरोप और विशेषतः अंग्रेज इतिहासकारों ने हमारे देश के प्राचीन और गौरवशाली इतिहास को कपोलकल्पित घोषित कर दिया। उन्होंने हमारे वेदों, रामायण, महाभारत और सारे संस्कृत के साहित्य को मिथक के गर्त में धकेल दिया।

मिथक का अर्थ, परिभाषा और स्वरूप : मिथक का अर्थ है कल्पित या मनगढ़त कथा या बात।

Mythology अर्थात् मिथक शास्त्र–किसी भी देश में काल्पनिक देवों के निर्माण और उनके पूजन को Mythology अथवा मिथक–शास्त्र कहते हैं।

मिथक के लक्षण –

१. मिथकों का अपना कोई दर्शन नहीं होता है।
२. देवों के जन्म का कोई निर्धारित समय नहीं होता अर्थात् उनके कल्पिनिक देवों का अपना कोई इतिहास नहीं होता है।
३. उनके पास सृष्टि रचना और प्रलय या आत्माओं के जन्म और कर्मों के बारे में कोई वैज्ञानिक विवरण नहीं होता है।
४. उनके देवी, देवताओं की संख्या स्थिर नहीं होती है और आवश्यकतानुसार यह बढ़ती और कम होती है।
५. देवों के रहने का कोई निश्चत स्थान नहीं होता है।

६. देवी-देवताओं के देवत्व का कोई विवरण नहीं होता है।

७. उनके देवी देवताओं में मनुष्यों के समान लाचल, ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, क्रोध आदि दोष होते हैं।

८. उनके देवी देवताओं का सामाजिक जीवन पर कोई प्रभाव नहीं होता क्योंकि वे आदि मानवों के मस्तिष्क की काल्पनिक कथायें हैं। विश्व की सब मिथकों में उपर्युक्त विशेषताएँ समान रूप में पाई जाती हैं। ये मिथक संबन्धित देशों के उपासना मार्गों का रूप धारण कर लेते हैं और जनता इनका पूजन शुरू कर देती है। जैसे सिकन्दर यूनान के काल्पनिक देवता Heracules का और उनकी माता Dionysus का पूजन करती थी।

मिथकों के निर्माण एवं उत्पत्ति का कारण काल की अवधारणा का अभाव होता है। इसके अतिरिक्त इतिहास के तत्त्व का बोध न होना भी मिथकों को जन्म देता है।

युनान में उपरोक्त दोनों बातों के अभाव के कारण मिथकों के निर्माण के कारण वहां की ईसाई संस्कृति भी विज्ञान विरोधी हो गई। वहां के इतिहास की भी यही दुर्दशा हुई।

भारतीय संस्कृति विज्ञान प्रधान है और इसी कारण भारतीय इतिहास शास्त्र भी मिथक प्रधान न होकर विज्ञान प्रधान है। भारतीय साहित्य में कभी भी मिथकों का निर्माण नहीं हुआ। ज्ञान, विज्ञान के गम्भीर और गूढ़ रहस्यों को समझाने और स्पष्ट करने के लिए यहां रूपक और प्रतीकों का आश्रय लिया गया है। वहां मिथक का तो स्पर्शमात्र भी नहीं है। परन्तु मिथक और रूपक में अन्तर है। भारत में मिथकों के स्थान पर सत्य कथायें लिखी गई। जब रूपक और प्रतीक अपने शक्तिग्रह से भटक कर अपने संकेतों के अर्थ के संदर्भ में अस्पष्ट और अनेक सन्देहों से ग्रस्त हो जाते हैं, तब मिथक की सृष्टि होती है। फिर परिणाम यह होता है कि उस देश की संस्कृति ही वैज्ञानिक-चिन्तन से विच्युत और भ्रष्ट होती हुई मिथक के मायाजाल में खो जाती है। उदाहरणार्थ ईसाई संस्कृति में दो अति वैज्ञानिक तथ्य भारतीय संस्कृति से लिए थे – १. प्रकृति के सप्त आवरण के पाश्चात् विज्ञान धन सत्ता का अस्तित्व; २. पृथ्वी की सृष्टि छः दिन की संरचना और सातवां दिन अभी चल रहा है; परन्तु कालक्रम में कालचिन्तन के अभाव के कारण छः दिन का अर्थ छः मन्वन्तर न करके ६००० वर्ष कर लिया; सातवां मन्वन्तर चल रहा है यह भूलाकर ईश्वर को वहां सातवें आसमान पर पहुंचा दिया गया है। परिणाम यह हुआ कि ईसाई धर्म विज्ञान विरोधी बन गया।

काल पुरुष का अनुपम विग्रह (मूर्ति)

इतिहासविदों और महर्षियों ने इतिहास पुरुष के महान विग्रह (मूर्ति) का पूजन सर्वदा महाकाल के मंदिर में किया है। इसके व्यक्तित्व का निर्माण सृष्टि संवत अर्थात् श्वेतवाराह कल्प से होता है। इस लिए इतिहासपुरुष वराहमुख है। संपूर्ण विश्व कर कालप्रवाह उसका विवेच्य विषय है। इसलिए यह महोदर है। पृथ्वी का रंग उसकी वर्ण छटा है। अतः उसे कुशाभास कहा गया है। इसके एक हाथ में अक्षसूत्र है क्योंकि काल का संख्यात्मक निर्देश वहां यथार्थ गणना के साथ प्रस्तुत है। ज्ञानामृत का दान ही इतिहास का पावन उद्देश्य है। इसलिए उसके दूसरे हाथ में सुधाघट है। इतिहास

पुरुष का यह अनुपम विग्रह (मूर्ति) कमल के आभूषण से विभूषित है। यहाँ कमल विकास का प्रतीक है।

इतिहासः कुशभासः सूकरास्यो महोदरः।
अक्षसूत्रं घटं विभ्रत्पंकजाभरणान्वितः।

भारतीय शिल्पशास्त्र में इतिहास पुरुष का यही महान लाक्षणिक विग्रह है जो मिथक नहीं प्रतीकात्मक है।

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय इतिहास शास्त्र मिथक प्रधान नहीं, विज्ञान प्रधान है।

भारत में ज्ञान, विज्ञान के रहस्यों की गूढ़ ग्रन्थियों को स्पष्ट करने व समझाने के लिए मिथकों के स्थान पर सत्य कथायें लिखी गईं। मानव सृष्टि के गत लगभग २ अरब वर्षों के इतिहास के लिखने में अनेक प्रकार की कठिनाईयां हैं। काल के इस सुदीर्घ प्रवाह में अनेक परिवर्तन हुए हैं और बहुत-सी ऐतिहासिक सामग्री नष्ट भी हो गई, परन्तु फिर भी इस लम्बे प्रवाह में अभी भी कुछ सत्य और संकेत ऐसे हैं जो तथ्यों के बहुत निकट हैं। अनेक आधार पर सृष्टि के वैज्ञानिक इतिहास को प्रामाणिकता के साथ लिखा जा सकता है। पश्चिम के इतिहासकार इनको मिथक कहते हैं, परन्तु आधुनिक विज्ञान की कसौटी पर खरे उतर रहे हैं। 'कालयात्रा' के विद्वान लेखक श्री वासुदेव पोद्दार ने अपनी इस पुस्तक में ऐसे ३४ तथ्यों की सूची दी है।

इतिहास शास्त्र और मन्वन्तरवाद

पृथ्वी के सारे इतिहास की कुंजी मन्वन्तर के विज्ञान में निहित है। इसकी सहायता से अतीत ही नहीं पृथ्वी का वर्तमान और भविष्य अच्छी प्रकार समझा जा सकता है। इस ग्रह के समग्र इतिहास की कुंजी छः भागों में विभक्त है — १. मनु, २. सप्तर्षि, ३. देव, ४. इन्द्र, ५. मनुपुत्र, और ६. अवतार।

मन्वन्तरं मनुर्देवा मनुपुत्राः सुरेश्वरः।
ऋषयोंऽशावतारश्च हरेः षड्विधमुच्यते।। भागवत १२-७-१५

पृथ्वी का ४ अरब ३२ करोड़ वर्षों का इतिहास १४ मन्वन्तरों में विभक्त है। सूर्य इतने वर्षों में आकाशगङ्गा के केन्द्र की १४ परिक्रमा पूर्ण करता है। एक परिक्रमा का काल ३० करोड़ ६७ लाख २० हजार वर्ष है। इतनी दीर्घ यात्रा के कारण उसका सारा ईंधन समाप्त हो जाता है। उसका पूर्णतः नवीकरण हो जाता है। यही उसका मनु परिवर्तन है। अंदर के ईंधन के बदलने से उसकी सातों किरणें बदल जाती है। किरण का प्रसिद्ध नामपर्याय ऋषि है। यही सप्तर्षि परिवर्तन है। ऋषि व किरणों के मिलने से जो नवीन तत्त्व पैदा होता है वह प्राणरूप देवसंस्था है। उसका भी नवीकरण हो जाता है। देवसंस्था का प्रमुख प्रतिनिध तत्त्व यहां इन्द्र है। यह भी बदल जाता है। मनुपुत्र वहां बीज है। जिससे भावी सृष्टि का विकास होता है। वह भी मनु के बदलने से बदल जाता है। नवीनबोध की सृष्टि होती है, यही मनुपुत्रों के बदलने का अर्थ है। पुराने बीज के स्थान पर नये बीज का आगमन। सूर्य का ही एक पर्याय विष्णु व हरि है। जब सतत वर्तमान विकास में अवरोध उत्पन्न होता है तब उस की समाप्ति भी सूर्य के तेजोवतरण से होती है। यही यहां अवतार का तात्पर्य है। अवरोध जिस प्रकार का

होता है शक्ति का आवरण भी उसके अनुसार होता है। पुराणों में प्रति मन्वन्तर इन छः तत्त्वों के पृथक-पृथक नाम दिए गए हैं। यदि इन नामों के अर्थ पर विचार किया जाए तो मन्वन्तरों के काल-विज्ञान की भाषा को समझा जा सकता है।

इतिहास शास्त्र एवं युग विभाजन

काल के अखंड प्रवाह में मानवों के गतिशीलजीवन का वृहत् इतिहास है। इस गति का विभाजन युग है। काल के इस सतत चलने वाले प्रवाह को युग विभाजन के माध्यम से ही समझा जा सकता है। भाषा ने इसे भूत, वर्तमान और भविष्य के नाम से संबोधित किया है; परन्तु इस प्रवाह के स्वत्व को निर्दिष्ट करने के लिए संख्यात्मक संकेत आवश्यक हैं क्योंकि जो वर्तमान और भविष्य है वह कालक्रम में भूतकाल हो जाता है और काल के इस अखंड प्रवाह की किसी भी घटना को पुनः काल के संदर्भ में संकेतित करना कठिन हो जाता है। यदि कालगत संकेत का मात्रक निश्चित न हो तो हम किसी भी कालबिन्दु की पहचान वर्ष के लघुतम मान से भी नहीं कर सकते। ऐसी स्थिति में इतिहास की वही हालत होती है जो यूनान के इतिहास की हुई।

पाँच प्रकार का युग विभाजन : १. पहला प्रकार सृष्टि संवत पर आधारित है और प्राचीन इतिहास को रेखांकित करने के लिए है। यह किसी जाति विशेष, घटना विशेष पर आधारित नहीं है। इसका संबन्ध उस काल से है जो सारे ब्रह्माण्ड को व्याप्त करता है।

२. संवत प्रधान संवत्सर गणना-यह गणना संवतों की है – यथा युधिष्ठिर संवत, रामसंवत, विक्रम संवत, शालीवाहन संवत, ईसाई सन्, हिजरी सन् इत्यादि।

३. रूपात्मक प्रधान गणना-इस गणना का संबन्ध इतिहास के साथ-साथ विकासवाद से भी है। जैसे पाषाणयुग, ताम्रयुग, लौहयुग आदि।

४. यह विभाजन सांस्कृतिक विकास की युगप्रधान कल्पना पर आधारित है – जैसे स्वर्णयुग, रजतयुग, सांस्कृतिक पुनरुथान, बरोक, Enlightenment, Re-enlightenment, Age of Reason आदि।

५. यह विभाजन काल के रूपात्मक परिवेश की प्रतिबद्धता के आधार पर किया गया है यथा– आदिमयुग, प्राचीनयुग, मध्ययुग आदि।

पश्चिम में यह विभाजन Era कहलाता है। ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी में इसका प्रथम बार व्यवहार हुआ।

१. रोमन Era **:** इसका आधार रोम की ईसा पूर्व ६५३ शताब्दी की स्थापना से है। इसका उपयोग ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी में इतिहास के विद्वान Livy ने किया। यह रोम की दन्त कथाओं पर आधारित हैं।

२. ईसाई सृष्टि संवत : यह Old Testament की सृष्टि कथा पर आधारित है। यह सृष्टि छः दिन में बनी। एक दिन का मानवीय मान ५०० वर्ष है। अतः इसके अनुसार ईसा तक इस सृष्टि को ३००० वर्ष हो गए थे। १८ वीं शताब्दी तक तो यह ईसाई मत तक ही सीमित रहा; परन्तु बाद में यह

ईसाईमत से हट कर सामान्य कालमान के रूप में स्वीकार कर लिया गया। ईसा पूर्व के माध्यम से इसे अतीत के लिए भी स्वीकार कर लिया गया। ए.डी. का व्यवहार मध्ययुग से शुरु हुआ। ईसा के अवतरण की घटना को यहाँ केन्द्र में रखा गया है।

शती Century का व्यवहार भी अति नया है। इसका १७वीं, १८वीं शताब्दी के मानववादियों ने सर्वप्रथम प्रयोग किया। मध्ययुगीन लेटिन में इसका कहीं भी व्यवहार नहीं है।

Century या शती का सर्वप्रथम व्यवहार विश्व के आदि ग्रन्थ ऋग्वेद में हुआ है – ''जीवेम शरदः शतम्''

Modern इसका व्यवहार Antiquus के खिलाफ मध्ययुग में प्रचलित हुआ। इससे प्राचीन संदर्भ में नूतन की अवधारणा भरी होती है। भारत में पुराण, पुरा, पूर्व के अनेक प्रयोग ऋग्वेद में मिलते हैं। 'पूर्व' और 'नूतन' इन शब्दों का एक साथ प्रयोग विश्व की प्राचीनतम पुस्तक ऋग्वेद में मिलता है।

पश्चिम में इतिहास और युग दोनों का स्वरूप अत्यन्त अस्पष्ट है। वहां इनका महत्त्व एक 'मनोविचार' से अधिक कभी नहीं रहा। इसी प्रकार काल की सैद्धान्तिक अवधारणा एक साथ रेखा की तरह रही है– जो चार, पांच हजार वर्ष के बाद कहीं दिखाई नहीं देती।

भारतीय इतिहास शास्त्र एवं कालक्रम

इतिहास शास्त्र के प्रथम संस्थापक : ज्ञान, विज्ञान की १४ विधाओं और ६४ कलाओं के प्रदाता श्री ब्रह्माजी, जो देवताओं के शैक्षिक और आध्यात्मिक विश्व साम्राज्य के प्रथम सम्राट थे, ने विश्व में सर्वप्रथम इतिहास शास्त्र की स्थापना की और इसके दो ग्रन्थ १. ब्रह्मसंहिता और २. महापुराण लिखकर अपने उत्तराधिकारियों को सौंपे ताकि वे अपने-अपने समय की घटनायें उनमें लिखते जायें। इतिहास के प्रचार-प्रसार का विश्व में यह प्रारम्भिक प्रमाण था। भारतीय इतिहास के प्रथम खंड देवयुग के १०,००० वर्ष पूर्ण होने तक इन दोनों ग्रन्थों के श्लोकों की संख्या १ अरब तक पहुंच गई।

वर्तमान श्वेतवाराह कल्प के प्रथम मनु स्वायम्भुव और इतिहास : वर्तमान कल्प के प्रथम मनु स्वायम्भुव ने ब्रह्मा के तत्कालीन उत्तराधिकारी से इतिहास की पुस्तकें देने के लिए निवेदन किया। उन्होंने उपरोक्त दोनों ग्रन्थों का संशोधन कर आवश्यक सामाजिक परिवर्तनों के साथ ४ लाख श्लोकों का एक ग्रन्थ तैयार कर स्वायम्भुव मनु की राजधानी बहिष्मती को भेज दिया। स्वायम्भुव मनु ने उस ग्रन्थ की प्रतियां बनवाकर प्रचारार्थ गुरुकुलों के आचार्यों को वितरित कर दीं। इतिहास के प्रचार-प्रसार की यही पद्धति विश्वभर में बहुत लम्बे समय तक चलती रही।

विश्व के प्रथम चक्रवर्ती सम्राट् महाराजा पृथु और इतिहास : महाराजा पृथु ज्ञान, विज्ञान की शिक्षा को अधिक गति प्रदान करना चाहते थे। अतः उन्होंने गुरुकुलों के आचार्यों, इतिहासविदों और अन्य विषयों के विद्वानों की एक बड़ी सभा का आयोजन अपनी राजधानी में किया। शिक्षा संबन्धी विषयों के बारे में, काफी समय तक विचार विमर्श होता रहा। इसी सभा में इतिहास की एकत्र सामग्री का संशोधन किया गया। उसमें आवश्यक काँट-छाँट और अपेक्षित संवर्धन कर इतिहास की एक

महत्त्वपूर्ण पुस्तक तैयार की गयी। इसकी प्रतियाँ बना कर शिक्षा संस्थाओं के संचालकों और गुरुकुलों के आचार्यों को बांट दी गयी। इतिहास की शिक्षा को सारे विश्वभर में गतिमान करने के लिए इतिहास के इन नवीन ग्रन्थ का प्रचार किया गया।

इतिहास के प्रचार-प्रसार और प्रशिक्षण की स्थाई व्यवस्था : उपरोक्त सभा में इतिहास के प्रचार और प्रशिक्षण की एक नई स्थाई व्यवस्था की योजना बनी। इस योजना के अनुसार दो जातियों 'मागध' और 'सूत' को इतिहास के प्रचार और प्रशिक्षण के लिए पूर्णकालिक दायित्व दिया गया। वर्ष में ८ मास इनको घर-घर में जाकर इतिहास का प्रचार करने के लिए आदेश दिया गया। इनके परिवारों के जीवन निर्वाह के लिए मागध को मगध और सूत को तेलंगाना जागीर के दिये गये। इनको वर्ष के ८ मास इतिहास के पूर्णकालिक कार्यकर्ताओं के नाते इतिहास का कार्य करना था और बाकी बचे चार मास अपने परिवारों की देखभाल करना।

काफी दीर्घकाल तक विश्व में इतिहास की शिक्षा प्रचार की यही पद्धति चलती रही। कालक्रम में इसी योजना की परम्परा के अन्तर्गत कथावाचकों, वृत्तलेखकों, चारणों, भाटों, और मिरासियों का निर्माण हुआ। इतिहास के प्रचार और प्रसार की इसी परम्परा के अन्तर्गत महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक साहित्य सामग्री का भी निर्माण हुआ है।

इतिहास के प्रचार के अतिरिक्त इस स्थाई योजना का दूसरा पक्ष इतिहास लेखन और उसके संशोधन का कार्य भी था। यह कार्य योजना ने प्रत्येक युग के इतिहास के विद्वानों के ऊपर छोड़ दिया जिन्होंने अपने-अपने समय में इतिहास के लेखन के साथ-साथ इतिहास के ग्रन्थों में आवश्यक संशोधन के अतिरिक्त इतिहास की शिक्षा और प्रशिक्षण में भी समय के अनुसार अपेक्षित सुधार भी किये।

वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तर के सूर्यवंश के महाराजा इक्ष्वाकु से लेकर महाभारत तक ऐसे ३० विश्वविख्यात इतिहास के विद्वानों के नाम मिलते हैं जिन्होंने महाराजा पृथु की योजना के अन्तर्गत अपने-अपने समय में इतिहास के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे और इतिहास के संशोधन और प्रशिक्षण में भी महत्त्वपूर्ण योगदान किया। इन तीसों इतिहास के विद्वानों के नामों की सूची उपलब्ध है, परन्तु इनमें से केवल चार की ही पुस्तकें उपलब्ध है। शेष ग्रन्थ सुदीर्घ काल प्रवाह में नष्ट हो गये। जिन चार के ग्रन्थ अभी उपलब्ध हैं इनके नाम हैं- कृष्ण द्वैपायन, जैमिनी, गर्ग और वाल्मीकि।

वर्तमान इतिहास लेखन एवं कालक्रम : अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना का उद्देश्य अपने देशभारत के इतिहास का पुर्नलेखन करना है। विश्व में अपने देश का इतिहास सर्वाधिक लम्बा है। यदि कोई पूछे कितना लम्बा है तो कहना पड़ेगा कि यह इतना ही लम्बा है जितना कि काल। इसका आरम्भ वर्तमान श्वेतराह कल्प से होता है और इसकी अवधि १९७ करोड़ वर्षों से भी अधिक है। भारतीय इतिहास शास्त्र की अवधारणानुसार इस दीर्घकालीन इतिहास के दो पक्ष हैं – मानव सृष्टि और उसके विकास का इतिहास यह इसका प्रथम पक्ष है, दूसरा पक्ष है प्रकृति का इतिहास। इतिहास का लेखन हो या पुनर्लेखन यह बिना कालक्रम के संभव नहीं है। जब इतिहास लिखने की यह योजना

बन रही थी तो इसके निर्माताओं के सम्मुख यह प्रश्न उत्पन्न हुआ कि यह लेखन किस कालक्रम के द्वारा किया जाए। वर्तमान में अपने देश का जो इतिहास उपलब्ध है वह तो ईसाई कालगणना के ईसा के पूर्व और ईसा के बाद के कालक्रमानुसार लिखा गया है, परन्तु इस गणना में ईसा के जन्म को मध्य में रखकर ईसा के पूर्व और ईसा के पश्चात् का कालक्रम बनाया है। इस गणना का अस्तित्व १९९९ वर्ष का है और अभी इसका २००० वां वर्ष चल रहा है। इतनी अल्पायु वाली गणना १९७ करोड़ वर्षों के इतिहास का लेखन कर सकती है क्या? उत्तर यह है कि यह गणना ईसा के जन्म से पूर्व अधिक से अधिक चार हजार वर्ष तक तो जा सकती है, परन्तु भारत के उपर्युक्त करोड़ों वर्षों के इतिहास को लिखना इसके लिए संभव नहीं है। इसके अतिरिक्त इस गणना का उस काल से जो ब्रह्माण्ड को व्याप्त करता है, संबन्ध नहीं है अपितु ईसा के जन्म के साथ है अतः भारतीय इतिहास के दूसरे पक्ष अर्थात् प्रकृति के इतिहास का लेखन तो इसके द्वारा कदापि संभव नहीं हो सकता।

इसलिए कालक्रम की उपर्युक्त समस्या का समाधान करने के लिए योजना के कार्यकर्ताओं ने विश्व में प्रचलित तत्कालीन मुख्य-मुख्य निम्नलिखित कालगणनाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया।

ईसाई सन् १९९९ के अनुसार विश्व की प्रमुख कालगणनाएँ इस प्रकार हैं —

१. भारतीय कालगणना	—	१,९७,२९,४९,१०० वर्ष
२. चीन कालगणना	—	९,६०,०२,२९४ वर्ष
३. खताई (हित्ती)	—	८,८८,३८,३७० वर्ष
४. चाल्डियन	—	२,१५,००,००० वर्ष
५. पारसी	—	१,८९,९९४ वर्ष
६. फिनीशिया	—	३०,००० वर्ष
७. मिस्री	—	२७,६४४ वर्ष
८. तुर्की	—	७,६०४ वर्ष
९. रोमन	—	२,७५२ वर्ष
१०. ईसाई	—	१,९९९ वर्ष
११. हिजरी	—	१,४१७ वर्ष

ऊपर की सूची से स्पष्ट होता है कि भारतीय कालगणना सबसे प्राचीन है। अन्य गणनाएँ कम आयु की है। तुलनात्मक अध्ययन से एक अन्य तथ्य भी योजना के निर्माताओं को मालूम हुआ और वह यह कि भारतीय कालगणना को छोड़कर बाकी सब गणनाओं का सम्बन्ध ब्रह्माण्ड को व्याप्त करने वाले काल से न होकर उनका सम्बन्ध देश विशेष या वर्ग विशेष या पुरुष विशेष या घटना विशेष के साथ है। इस प्रकार इन सबका अस्तित्त्व सीमित है। एक केवल भारतीय कालगणना ही है जो उस काल के साथ सम्बन्धित है जिनकी स्थापना ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के पश्चात् सर्वप्रथम हुई और वह सारे विश्व को व्याप्त करती है।

अतः ऊपर के तथ्यों के आधार पर यही निर्णय हुआ कि भारतीय इतिहास लेखन की अवधारणा के अनुसार केवल युगों की भारतीय कालगणना ही भारत के इतिहास के पुनर्लेखन सम्बन्धी सभी आवश्यकताओं को पूर्ण करती है। इसलिए योजना ने इसी गणना को इतिहास लेखनार्थ स्वीकार किया है। इस गणना का वेदों, पुराणों और मनुस्मृति में एक जैसा उल्लेख मिलता है। बाद में भारत के विश्वविख्यात वैज्ञानिकों – आर्यभट्ट, भास्कराचार्य और ब्रह्मगुप्त ने इस गणना पर महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे। इससे प्रमाणित होता है कि इस गणना का स्वरूप वैज्ञानिक ही नहीं वैश्विक भी है भारत ही नहीं प्रत्युत सारे विश्व के इतिहास के लेखन की इसमें क्षमता है। इस प्रकार की अन्य कोई कालगणना नहीं है। इसकी सूक्ष्म से सूक्ष्म इकाई परमाणु है और महान् इकाई महाकल्प है जो ब्रह्मा की १०० वर्ष की पूर्ण आयु है। इस प्रकार यह कालगणना ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति, विकास, लय और परिवर्तन एवं मानवीय संस्कृति के युगात्मक इतिहास का विस्तृत विवरण प्रस्तुत करने में सक्षम है।

संदर्भ ग्रन्थ :

१. कालयात्रा (१६८५) – वासुदेव पोद्दार, दी उद्बोधन ट्रस्ट, १८, नेताजी सुभाष रोड़, कलकत्ता – ७००००१

२. भारतीय कालगणना की रूपरेखा (१६८५) – डॉ. दामोदर झा, विश्वेश्वरानन्द विश्वबन्धु संस्थान, होशियापुर, पंजाब।

३. भारतीय कालगणना का वैज्ञानिक एवं वैश्विक स्वरूप (१६६८) – डॉ. रविप्रकाश आर्य, अखिल भारतीय इतिहास संकल योजना, दिल्ली।

भारत के इतिहास का विनाश व विकृतिकरण एवं उसका निराकरण

किसी भी देश के राष्ट्रनिर्माण एवं उज्ज्वल भविष्य के उदय के लिए उस देश के इतिहास का बड़ा महत्वपूर्ण योगदान रहता है। विदेशी आक्रमक मुसलमान हों अथवा अंग्रेज़ या अन्य, वे इतिहास के इस महत्त्व को अच्छी प्रकार समझते थे। यथा इसके संबंध में एक कथन है "यदि आप किसी देश पर शासन करना चाहते हैं तो उसके इतिहास को नष्ट कर दो और इस प्रकार उस देश को दास बनाने का ५० प्रतिशत काम पूरा हो जाएगा"। परन्तु किसी भी जाति के अतीत को पूर्णतः नष्ट करना संभव नहीं है, हाँ उसको विकृत अवश्य किया जा सकता है।

मुसलमान इतिहास की उपरोक्त उक्ति के मर्म को अच्छी तरह समझते थे, इसलिए शत्रु पक्ष के इन मुसलमान इतिहासकारों ने अपने सुल्तानों के मार्गदर्शन में यहाँ के इतिहास के विपक्ष में प्रचार करना शुरू किया। इस्लाम के गाज़ी सुल्तान मुहमद गजनवी के साथ अलबेरूनी नामक मुस्लिम इतिहासकार सर्वप्रथम हिन्दुस्थान में आया और यहाँ का इतिहास लिखने के लिए वह यहाँ से पर्याप्त ऐतिहासिक सामग्री अपने साथ ले गया, परन्तु उसने यह भी कटाक्ष किया कि 'हिन्दुस्थान का अपना कोई पुराना इतिहास नहीं है तथा हिन्दुओं को इतिहास लेखन की कला नहीं आती थी।'

विकृतिकरण के विभिन्न प्रकार

सत्य घटनाओं का दुर्लक्ष : एक हजार वर्ष चले हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष में हिन्दुओं के शौर्य की अनेक घटनाओं का जो मुसलमान शासकों के विपक्ष में जाती हैं, इन दरबारी मुसलमान इतिहासकारों ने दुर्लक्ष कर अपने आकाओं का गुणगान कर हिन्दू प्रतिरोध के इतिहास को विकृत किया। शत्रुपक्ष के इन इतिहासकारों के इस दृष्टिकोण को प्रमाणित करने के लिए कुछ उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं –

(१) मुस्लिम इतिहासकारों ने मुहम्मद बख्त्यार खिलजी की जिसने नालन्दा और विक्रमशिला के हिन्दू विश्वविद्यालयों को जलाकर राख कर दिया था, मुस्लिम गाज़ी और अजेय योद्धा के नाते बहुत प्रशंसा की है, परन्तु उसका अंत कैसे हुआ इसके बारे में वे सब चुप हैं। उसके अंत के संबंध में वास्तविकता यह है कि बिहार और बंगाल के हिन्दू राज्यों को जीतने के बाद उसके मन में असम के पूर्व के एकमात्र आखिरी हिन्दू राज्य को जीतकर इस्लाम का गाज़ी और योद्धा बनने की महत्वाकांक्षा उत्पन्न हुई और उसने सन् १२१० में असम पर आक्रमण कर दिया। वहाँ का हिन्दू राजा पृथु था। ब्रह्मपुत्र नदी के तट पर कामरूप जिले में भयंकर युद्ध हुआ और उसमें उसकी सारी सेना मारी गई और वह स्वयं भी मारा गया। उसकी कब्र उत्तर गुहाटी में बनी है।

(२) **मीर जुमला :** औरंगजेब के प्रसिद्ध सेनापति मीर जुमला ने सन् १६६२ में असम पर

आक्रमण कर वहाँ के हिन्दू राज्य का अधिकांश भाग जीतकर सन् १६६३ में वहाँ के राजा से संधि कर दिल्ली वापस जाने की योजना बनाई परन्तु असम की जलवायु, अतिवृष्टि, मच्छरों के प्रकोप और असम के हिन्दू वीर सैनिकों के प्रहार से उसका शरीर जर्जरित हो गया। अतः वह दिल्ली पहुँचने के पूर्व ही असम में अल्लाह को प्यारा हो गया।

(३) **काला पहाड़ :** काला पहाड़ ने बंगाल और उत्कल के हिन्दुओं के अनेक मंदिरों को तोड़ डाला। उसके बाद एक बड़ी मुस्लिम सेना लेकर असम पर आक्रमण कर उसने वहाँ की अधिष्ठात्री देवी कामाख्या के मंदिर को भी तोड़ा। अन्य भी कई पूजास्थानों को तोड़-तोड़ कर अपवित्र कर दिया। यह विनाश करने के बाद वह बंगाल वापस जाना चाहता था, परन्तु असम के हिन्दू रणबांकुरों ने अपनी शौर्य परम्परा के अनुसार उस आततायी को युद्ध में मारकर उसकी भी कब्र कामरूप के प्रसिद्ध हाजो नाम के गांव के पास के केदार पहाड़ में बनाकर हिन्दू मन्दिरों के ध्वंस का बदला चुका लिया।

(४) **औरंगजेब का सेनापति राजा रामसिंह :** जब कोई भी मुस्लिम सेनापति असम के हिन्दू राज्य का विलय नहीं कर सका तो औरंगजेब ने मिर्जा राजा जय सिंह के सुपुत्र राजा रामसिंह को दिल्ली में अपने दरबार में बुलाकर उसे जनवरी १६६८ में ४ हज़ारी का मनसब, खिल्लत और पोशाक प्रदान की और एक लाख की सेना देकर आज्ञा दी कि जाओ और असम की भूमि पर से काफिरों के राज्य को समाप्त कर इस्लाम का राज्य वहाँ स्थापित करो। जीत कर आओगे तो तुम्हारा स्वागत होगा और हार कर आए तो दंडित होगें। औरंगजेब का मामा शाइस्ता खां शिवाजी से पुणे में अपनी तीन उंगलियां कटवाकर बंगाल के सूबेदार के नाते दण्ड भोग रहा था। राजा रामसिंह अपनी विशाल सेना के साथ बंगाल की राजधानी ढाका पहुँचा और वहाँ उसको मिला। वहाँ से चलकर उसने अपनी सेना के साथ मई १६६९ में असम में प्रवेश किया। सन् १६६९-७० दो वर्ष तक वह असम को जीतने के लिए साम,दाम, दण्ड, भेद, और अन्य उपायों का उपयोग करता रहा, परन्तु अन्ततः सन् १६७१ में असम के सेनापति लाचित बरफुकन की सेना राजा रामसिंह की सेना के साथ सरायघाट (गुवाहाटी) में टकराई। बड़ा भयंकर युद्ध हुआ। ब्रह्मपुत्र नदी के इस नौका युद्ध में रामसिंह की हार हुई। एक लाख से अधिक की सेना असम की ४०,००० हिन्दू सेना से पूर्णतः पराजित हुई। रामसिंह अपनी बची-खुची सेना के साथ भाग लिया। लाचित बरफुकन की सेना ने उसको असम की पश्चिम की सीमा से बाहर भगा दिया, परन्तु पराजय के बाद भी वह ५ वर्ष तक बंगाल में ही रहा और असम को विजय करने की योजनाएं बनाता रहा। अंत में औरंगजेब ने हताश होकर उसे सन् १६७६ में दिल्ली वापस बुला लिया।

(५) राजस्थान का इतिहास बताता है कि मेवाड़ के सिसोदियों और जोधपुर के राठौरों ने मिलकर जहांगीर (दिल्ली का मुस्लिम सुल्तान) को युद्ध में १७ बार हराया था।

(६) मेवाड़ के शूरवीर राणा राज सिंह ने औरंगजेब के मेवाड़ पर किए आक्रमण का उदयपुर नगर की सुरक्षा दीवार के बाहर प्रतिकार कर उसे पराजित किया था। हारने के बाद वह दिल्ली की ओर भागा। परन्तु राज सिंह ने अपनी शूरवीरता की राजपूती परम्परा के अनुसार उसका पीछा किया। **एक हजार वर्षीय हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष में हिन्दू प्रतिरोध के शौर्य की उपरोक्त और अन्य कई घटनाओं का**

इतिहासकारों ने इतिहास में स्थान न देकर उनको छुपाने का जो कुप्रयास किया है, वह इतिहास का अक्षम्य विकृतिकरण है।

उपर्युक्त घटनाओं का गहराई से अध्ययन करने पर यह प्रश्न पैदा होता है कि मुसलमान शासकों ने असम के हिन्दू राज्य को नष्ट करने के लिए बार-बार हारने के बाद भी आक्रमण क्यों जारी रखे? इसका मुख्य कारण था कि सैनिक शक्ति के द्वारा सारे विश्व का इस्लामीकरण करने की उन्होंने जो योजना बनाई थी वह इस प्रकार है— इस्लाम का उदय अरब में छठी शताब्दी में हुआ और इस्लाम की सेनाओं ने ५० वर्ष की अल्प अवधि में सारे मध्यपूर्व को जीतकर उसके सारे देशों का पूर्णतः इस्लामीकरण कर डाला। इससे मुस्लिम जगत के खलीफा और उसके अनुयायियों का साहस बढ़ा और उन्होंने सैनिक शक्ति के द्वारा सारे विश्व को मुसलमान बनाने की योजना बनाई। इस इस्लामीकरण के अभियान की योजना के दो पहलू थे। पहला पहलू था मध्यपूर्व से यूरोप पहुंचना और पूर्व को मुड़कर चीन तक पहुंच कर प्रशान्त महासागर के तट पर पहुंचना। योजना का दूसरा पहलू था हिन्दुस्तान को विजय करते हुए ब्रह्म देश के रास्ते दक्षिण की ओर से प्रशांत महासागर के तटवर्ती देशों को जीतकर इस्लामीकरण की वैश्विक योजना को पूर्ण करना।

अतः मध्यपूर्व की विजय के बाद इस्लाम की सेनाएं पूर्वी अफ्रीका को जीतती हुई जिब्राल्टर, मालटा के रास्ते १०० वर्ष के अन्दर स्पेन पहुँच गई। वहाँ से पूर्व की ओर मुड़कर 225 वर्ष में चीन पहुँच गई।

योजना के दूसरे पहलू को कार्यान्वित करने के लिए हिन्दुस्थान की पश्चिमी सीमा ताशकन्द, यारकंद और बलख-बुखारा से संघर्ष शुरू हुआ। यह हज़ार वर्षी युद्ध हिन्दू-मुस्लिम के बीच देश के गांव-गांव, नगर-नगर की गलियों में लड़ा गया। हिन्दू प्रतिरोध इतना भीषण था कि जहाँ इस्लाम २२५ वर्ष में चीन पहुँच गया वहां उसको दिल्ली में पहुँचने के लिए ५०० वर्ष लगे। बाद में संघर्ष और भी तीव्र हो गया और हिन्दुस्थान से आगे पूर्व की ओर इस्लाम का बढ़ना हिन्दू सैनिक शक्ति ने रोक दिया। हिन्दुस्थान के पूर्व के एकमात्र राज्य को विलय कर आगे बढने के लिए मुगल सुल्तानों ने १७ बार आक्रमण किए, परन्तु असम के हिन्दू वीरों ने असम में इस्लाम के कदम जमने नहीं दिए और उसके आगे प्रशांत महासागर तक पहुँचकर इस्लामीकरण की वैश्विक योजना को पूर्णतः विफल कर दिया। इस प्रकार विश्व की मानवता पर आए इस्लाम के संकट का निराकरण हिन्दू क्षात्र तेज के अतुलनीय शौर्य के द्वारा संभव हो सका। इसके लिए सारा विश्व भारत का ऋणी है। यह विश्व के इतिहास की अत्यंत महत्वपूर्ण घटना है, परन्तु उसे शत्रुपक्ष के इतिहासकारों और उनके अनुगामी भारतीय साम्यवादी और धर्मनिरपेक्षतावादी इतिहासकारों ने दुर्लक्ष कर अनदेखा कर दिया है क्योंकि इसका सारा श्रेय हिन्दू प्रतिरोध को जाता है। इस प्रकार की सत्य घटनाओं को छुपाना इतिहास का अक्षम्य विकृतिकरण है।

उपरोक्त हिन्दू शौर्य की सत्य घटनाओं और इसी प्रकार की हजार वर्ष के प्रतिरोध के पराक्रम की घटनाओं को उपरोक्त तथाकथित इतिहासकारों ने अनदेखा कर दिया है, परन्तु इस्लाम के

मौलवियों, मौलानाओं और कवियों ने इस सत्य को स्वीकार किया है कि उनकी इस्लामीकरण की वैश्विक योजना हिन्दुओं के प्रबल और अप्रत्याशित प्रतिरोध के कारण असफल हुई। यथा उर्दू का कवि मौलाना हाली अपनी कविता की निम्नलिखित पंक्तियों में इस सत्य को स्वीकार करता है –

''वह दीने हिज़ाजी का बेबाक बेड़ा।
निशान जिसका अक्से में पहुँचा।।
मुकाबिल हुआ जिसके न कोई खतरा।
न अम्मान में अटका न कुटिहा में ठिठका।।
किया पै सफर जिसने सातों समन्दर।
डूबा वह गंगा के दहाने में आकर।।"

अर्थात् "इस्लाम का वह निर्भीक नौसैनिक बेड़ा, जिसका ध्वज दुनिया के प्रत्येक भाग में फहरा और जिसके सामने कोई भी संकट नहीं आ सका, जिसको न अम्मान में रोका जा सका और न ही कुटिहा में, जिसने सातों सागरों को अपने अधीन कर लिया। वह अन्ततोगत्वा गंगा के मुहाने आकर गरक हो गया।"

विकृतिकरण ही नहीं विनाश भी

हिन्दुओं का पूर्णतः इस्लामीकरण करने के लिए उनके धर्म, संस्कृति, सम्मान, मानबिंदुओं, पुण्यस्थानों, मंदिरों, वेदशालाओं, विद्यालयों, विश्वविद्यालयों, हिन्दू राजाओं के महलों, दुर्गों आदि को विदेशी मुस्लिम शासकों ने नष्ट करने के लिए कोई कसर उठा न रखी। इस्लाम की इस ध्वंसात्मक लीला के कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं –

(१) **नालन्दा और विक्रमशिला के विश्वविख्यात विद्यापीठ का विनाश** : मुहम्मद बख़्यार खिलजी ने नालंदा के विश्वप्रसिद्ध विश्वविद्यालय को, जो ७ मील के घेरे में था और जहाँ १७,००० विद्यार्थी और ५००० आचार्य थे, नष्ट कर दिया। उसके विशाल पुस्तकालय को, जिसमें ज्ञान-विज्ञान के लाखों ग्रंथ थे, आग लगा दी। वह ६ मास तक जलता रहा। बिहार के भागलपुर नगर के निकट गंगा के तट पर स्थित विक्रमशिला विद्यापीठ को भी उसी आततायी ने जलाकर राख कर डाला।

(२) **उज्जैन का महाकालेश्वर मंदिर** : इस मंदिर के परिसर में ज्ञान-विज्ञान के, संस्कृत के ग्रन्थों का एक प्राचीन पुस्तकालय था। अलाउद्दीन ने उसमें आग लगा दी। वह भी ६ मास तक जलता रहा।

(३) **शीतकाल में औरंगजेब और अन्य मुसलमान शासकों के हमामों को गर्म करने के लिए लकड़ी के स्थान पर संस्कृत के ग्रंथ जलाए जाते थे।** मुसलमानों के राज्यकाल तक चलने वाली विनाश की इस लीला में लाखों ग्रंथ अग्नि की भेंट हो गए। अतः इस कारण भारतीय इतिहास के महत्त्वपूर्ण अध्याय लुप्त हैं। इससे भारत के इतिहास के पुनर्लेखन में अनेक कठिनाइयाँ पैदा हो गई हैं।

(४) **ऐतिहासिक सामग्री, दस्तावेजों, ग्रन्थों, अस्त्रा-शस्त्रों, पुरातात्त्विक वस्तुओं की लूट** : मुस्लिम शासकों और इतिहासकारों ने भारत के ज्ञान-विज्ञान और इतिहास सम्बन्धी सामग्री को भी जी भरकर लूटा। इस प्रकार हमारे बहुमूल्य और अनमोल ग्रंथ खलीफा की राजधानी बगदाद और कई अन्य मुस्लिम देशों में पहुँच गए।

(५) **तक्षशिला का विश्वविद्यालय** : यह विश्वविद्यालय रसायन विज्ञान और आयुर्वेद की काय चिकित्सा का वैश्विक केन्द्र था। महाराजा चन्द्रगुप्त यहाँ विद्यार्थी और चाणक्य प्राध्यापक थे। यह अपने भव्य भवनों से सुसज्जित १८ मील के क्षेत्र में स्थित था। हूणों ने इसे ईसा की पांचवीं शताब्दी में भूमिसात् कर दिया। आज यह स्थान पश्चिमी पाकिस्तान में है।

विदेशी शासक अंग्रेज और इतिहास

इस्लाम यहां आया इस देश भारत का इस्लामीकरण करने के लिए तो बाद में अंग्रेज (ईसाई) आए ईसाईकरण के लिए। समाज के उत्थानार्थ इतिहास के महत्व को अंग्रेज भलीभांति समझते थे। अतः उन्होंने भारत के इतिहास को नष्ट करने की मुसलमानों की ध्वंसात्मक नीति का सूक्ष्मता से अध्ययन कर यह मालूम कर लिया कि मुस्लिम शासक हिन्दुओं के भूतकाल को पूर्णतः समाप्त करने में असफल हुए हैं। अतः उन्होंने इतिहास को नष्ट करने की नीति का परित्याग कर दिया, परन्तु वे मुसलमानों से अधिक चतुर थे। इसलिए उन्होंने अपने राज्यकाल में भारत के इतिहास को जिस प्रकार बिगाड़ा है, उसका उदाहरण विश्व में मिलना कठिन है।

हिन्दू शक्ति का उदय

भक्ति आन्दोलन से इस देश में एक महान राष्ट्रीय हिन्दू शक्ति का उदय हुआ और इसने मुगलों के साम्राज्य को उखाड़ फेंका था। इसी शक्ति के दूसरे शत्रु अंग्रेजों से ४ युद्ध हुए और पांचवाँ युद्ध सन् १८५७ का स्वतंत्रा संग्राम था। इसमें, अंग्रेज़ हार चुके थे। अंग्रेज़ वायसराय लार्ड हार्डिंग ने भागने के लिए अपना घोड़ा तैयार कर लिया था, परन्तु अपने ही देश के कुछ लोगों के देशद्रोह के कारण उनका हाथ से जाता हुआ राज्य बच गया।

इतिहास के विकृतिकरण की त्रिसूत्री योजना

उपरोक्त पांचों युद्धों का गहराई से अध्ययन करने के बाद अंग्रेज इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि यहाँ का राष्ट्रीय समाज वास्तव में हिन्दू है और इसी कारण ये युद्ध हुए। भविष्य में भी १८५७ जैसे संग्राम की संभावना से इन्कार नहीं किया जा सकता। अतः इन सभी बातों का विचार कर अंग्रेजों ने अपने भारत के साम्राज्य को सुदृढ़ और स्थाई बनाने के लिए इस देश के इतिहास को विकृत करने के लिए त्रिसूत्री योजना बनाई। इस योजना की विस्तृत जानकारी वैश्विक मस्तिष्क वाले हिन्दू क्रांतिकारी लाला हरदयाल की अंग्रेजी पुस्तिका "My Divine Madness" में मिलती है। इसके तीन सूत्र इस प्रकार हैं –

(1) पहला सूत्र : De-Hindulisation of the Hindus;

(2) दूसरा सूत्र : De-nationalisation of the Hindus and

(3) तीसरा सूत्रः De-Socialisation of the Hindus

अर्थात् हिन्दुओं का अहिन्दुकरण, अराष्ट्रीयकरण और असमाजीकरण।

हिन्दू समाज का असमाजीकरण

हिन्दू समाज की एकात्मता को नष्ट करने के लिए अंग्रेजों ने इसमें ब्राह्मण-अब्राह्मण, छूत-अछूत, उत्तरवासी-दक्षिणवासी, आर्य -द्रविड़, ट्रायबल-नॉन ट्रायबल, राजपूत-जाट, सवर्ण-असवर्ण, आदि अनेक भेद उत्पन्न किए, जिसका हमारे इतिहास में कहीं भी उल्लेख नहीं है। इतना ही नहीं, अंग्रेजों ने हमारे समाज में भेद निर्माण कर इसकी वैज्ञानिक वर्ण-व्यवस्था को भंग करने के लिए वर्णों के आधार पर संस्थाएं निर्माण करने के लिए प्रोत्साहन दिया—यथा राजपूत महासभा, वैश्य महासभा इत्यादि, इत्यादि।

भारत की नैसर्गिक राष्ट्रीयता का विकृतिकरण

हिन्दू समाज के उपरोक्त विघटन से अंग्रेजों का समाधान नहीं हुआ और उन्होंने इस देश की राष्ट्रीयता को छिन्न-विच्छिन्न करने के प्रयास शुरू किए। आर्यों की आदि जन्मभूमि के बारे में विवाद यूरोपियन मानसिकता में १८ वीं सदी के अन्त में एवं १६ वीं सदी के प्रारम्भ में उत्पन्न हुआ। उनके मूल निवास के बारे में पाश्चात्य इतिहासकारों ने कई प्रकार के सिद्धांतों का आविष्कार कर डाला।

रॉयल एशियाटिक सोसायटी

एशिया के और विशेषतः भारत के इतिहास के लेखन के लिए लंदन में एशियाटिक सोसायटी की स्थापना की गई। १८ अप्रैल १८६५ को इसके तत्त्वावधान में अंग्रेज़ सरकार के मार्गदर्शन में अंग्रेज़ इतिहासकारों की सोसायटी के लंदन स्थित कार्यालय में सोसायटी के अध्यक्ष स्ट्रांगफील्ड की अध्यक्षता में आर्यों के मूल अभिजन के बारे में आविष्कृत मध्य एशियाई सिद्धांत का प्रतिपादन किया गया। उस पर चर्चा करने के बाद सर्वसम्मति से प्रस्ताव पारित कर दिया कि आर्यों का आदि स्थान मध्य एशिया था। कालक्रम में वहां से उनकी एक शाखा यूरोप चली गई और उसने वहां के आदिवासियों को युद्ध में हराकर यूरोप पर अधिकार कर लिया।

आर्यों की दूसरी शाखा एशिया से चल कर ईराक, ईरान अर्थात मध्यपूर्व में जा पहुंची। पहली शाखा के ही समान उन्होंने मध्य पूर्व पर अपना राज्य स्थापित कर लिया। तीसरी शाखा ने दुनिया की छत पामीर के पहाड़ को पार कर हिन्दुस्थान के पंजाब प्रांत पर आक्रमण कर दिया। वहाँ के द्रविड़ उनके सामने खड़े नहीं हो सके और आर्यों ने पंजाब पर अधिकार कर लिया। वहाँ से भारत का आर्यकरण शुरू होकर पूर्व की सीमा तक पहुँच गया। यूरोप के इतिहासकार मैक्समूलर के मत के अनुसार यह घटना ईसा पूर्व २५०० और ईसा पूर्व १५०० के मध्य अर्थात् ३५०० वर्ष पुरानी है।

इतिहास के इस विकृतिकरण के अनुसार अंग्रेजों ने यह सिद्ध किया कि हिन्दुओं के पूर्वज आर्य लोग मध्य एशिया में रहते थे। वे भारत में आक्रमक के नाते आए। अतः यह देश उनका नहीं है। ये विदेशी हैं। उनके बाद मुसलमान आए। उनका भी यह देश नहीं है। और अंत में ईसाई आए। उनका भी यह देश नहीं है। तीनों विदेशी हैं।

इसके अतिरिक्त उन्होंने यह भी प्रचार किया कि जब हम यहाँ पर आए तो यहाँ न तो कोई

सभ्यता थी और न कोई संस्कृति और न ही कोई राष्ट्रीय भाषा थी। हमने इस देश को राजनीतिक एकता प्रदान की। यहां पर तीन भगिनी संप्रदाय हैं -Three Sister Communitie हिन्दू, मुस्लिम और ईसाई ये तीनों मिलकर नया राष्ट्र बनाएं। जब ये इस का निर्माण कर लेंगे तो हम यहाँ से चले जाएंगे।

इण्डियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना

इतिहास के इस अद्‌भुत विकृतिकरण को कार्यान्वित करने के लिए अंग्रेजों ने सन्‌ १८८५ को इण्डियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना की। इसका नारा था 'हिन्दू-मुस्लिम और ईसाई आपस में हैं भाई-भाई' तीन भगिनी संप्रदाय (Three Sister Communities) 'हिन्दू, मुस्लिम और ईसाई। आर्यों के मूल अभिजन के बारे में अंग्रेजों द्वारा आविष्कृत मध्य एशियायी सिद्धांत यहां की सनातन, पुरातन राष्ट्रीयता का, जिसका श्रीगणेश विश्व के प्राचीनतम ग्रंथ ऋग्वेद में होता है, दुर्लक्ष कर यहां के राष्ट्रीय हिन्दू समाज को एक विदेशी संप्रदाय के रूप में विदेशी मुस्लिम और ईसाई आक्रामकों की पंक्ति में लाकर खड़ा कर दिया। इतना ही नहीं अंग्रेजों ने हिन्दू, मुस्लिम और ईसाइयों को Three Sister Communities के नाम से संबोधन करना शुरू कर दिया। उन्होंने यह भी प्रतिपादित किया कि ये तीनों संप्रदाय मिलकर एक नए राष्ट्र का निर्माण करें, जिसे । Nation in the making अर्थात निर्माणाधीन राष्ट्र – । Nation in the process of formation कहा गया।

Indian National Congress के द्वारा नए राष्ट्र के निर्माण करने का यह प्रयोग आरम्भ हुआ। नया राष्ट्र तो नहीं बना अपितु इस निर्माणाधीन राष्ट्रीयता के कारण देश का १५ अगस्त १९४७ को हिन्दू और मुस्लिम, इस आधार पर विभाजन हो गया। देश विभाजित होकर जब १९४७ में स्वतंत्र हुआ तो अंग्रेजों द्वारा स्थापित, पोषित कांग्रेस सत्ता में आई और उसने असफल होने पर भी इस प्रयोग को जारी रखा। संविधान भी इसी निर्माणाधीन राष्ट्रीयता के अनुसार बना है। इसके कारण आज स्वतंत्रता के ६१ वर्ष पूर्ण होने के बाद भी देश राष्ट्रीय दृष्टि से व्यवस्थित नहीं है। आज भी देश और समाज की भीतरी-बाहरी समस्याओं का एकमात्र कारण यह इतिहास का विकृतिकरण ही है। अंग्रेजों ने भारत के इतिहास के साथ एक महान अन्याय ही नहीं अपितु महापाप किया है। जिसे भारत कभी भुला नहीं सकेगा।

इससे आगे और भी बहुत सी बातें इतिहास के तोड़ने और मरोड़ने के बारे में है। उनमें से कुछ इस प्रकार है –

(१) **भारत एक देश नहीं है अपितु उपमहाद्वीप है :** अंग्रेजों ने देश की अखण्डता को नष्ट करने के लिए यह प्रचार किया कि भारत कभी भी एक देश नहीं रहा। यह तो उपमहाद्वीप है। इसी कारण इस देश में अनेक जातियां और अनेक राष्ट्र हैं।

(२) **यहां की जलवायु** गर्म है और इस कारण यहां के लोग सुस्त और आलसी होते हैं। इतना ही नहीं इस कारण पराक्रम शून्य भी हैं। इसलिए यहां शीत प्रधान देशों से आक्रमक आते रहे और अपने राज्य स्थापित कर यहां बसते रहे। परन्तु कालक्रम में वे भी सुस्त हो गए। उनको सक्रिय करने के लिए फिर बाहर से आक्रमण हुए। यहां आदिकाल से यही क्रम चलता रहा।

(३) **हिन्दू इतिहास लेखन कला से अनभिज्ञ :** अंग्रेजों ने यह भी प्रचार किया कि भारत का अपना कोई पुराना इतिहास नहीं है। हिन्दू इतिहास लेखन की कला नहीं जानते थे। उनका जो इतिहास है, कल्पनाओं के ऊपर आधारित है।

(४) **सन् १८५७** तक हिन्दुस्थान के लोगों को दुनिया हिन्दू के नाम से जानती थी और हिन्दू का सम्मान सारे विश्व भर में था, परन्तु अंग्रेजों ने इतिहास को दूषित कर हिन्दू को एक संप्रदाय बना दिया। इतना ही नहीं इससे भी अधिक विकृतिकरण का परिणाम यह हुआ कि हमारा सारा साहित्य, इतिहास और महापुरुष सांप्रदायिक हो गए। हमारी वर्तमान की सभी समस्याओं का यही एकमेव कारण है।

भारत के इतिहास के लेखनार्थ नए कालक्रम का आविष्कार

वर्तमान में विद्यालयों, महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों में जो इतिहास पढ़ाया जाता है, वह विलियम जोन्स द्वारा आविष्कृत कालक्रम के आधार पर लिखा गया है। यह कालक्रम है ईसा के जन्म से संबंधित ईसाई अवैज्ञानिक कालगणना के अनुसार निर्धारित कालक्रम। विलियम जोन्स ने संस्कृत भाषा अपने सचिव पंडित राधाकांत से सीखी और भारत के इतिहास को समझने के लिए राधाकांत के सहयोग से भागवतपुराण पढ़ा और पुराणों में उल्लिखित युगों की भारतीय कालगणना के कालक्रम को स्वीकार किया, परन्तु बाद में जाने या अनजाने में उसने भारतीय कालक्रम को दुर्लक्ष कर घोषणा की कि भारत की केवल सिकन्दर के भारत पर आक्रमण करने की ईसापूर्व ३२७ की ही तिथि एक मात्र सत्य तिथि है और इसको उसने भारत के इतिहास के लेखन के लिए सन् १७८४ में आधारभूत तिथि घोषित कर दिया। तब से यह ईसा के पूर्व और ईसा के पश्चात् का विदेशी कालक्रम चला आया है।

स्वतंत्र भारत और इतिहास

शासन देशी हो या विदेशी वह अपने स्वार्थ के अनुसार इतिहास को दिशा देता है। १५ अगस्त १९४७ को हमारा देश हिन्दुस्थान विभाजित होकर स्वतंत्र हुआ। राजसत्ता अंग्रेजों द्वारा स्थापित, पालित और पोषित कांग्रेस के हाथ आई और जवाहरलाल नेहरू देश के पहले प्रधानमंत्री बने। विचारों की दृष्टि से वे मार्क्सवादी थे। उन्होंने हिन्दुस्थान को समाजवादी अवधारणा के अनुसार कल्याणकारी राज्य घोषित किया।

धर्मनिरपेक्षता पर आधारित नई शिक्षा नीति

साम्यवादी अवधारणा के अनुसार नई शिक्षा नीति की योजना पंडित नेहरू के मार्गदर्शन में बनी। इसके लिए दो संस्थाओं का निर्माण किया गया–एन.सी.ई.आर.टी. और जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय।

(१) NCERT का दायित्व था देश के शिक्षा विभाग की पाठ्यपुस्तकों का लेखन व प्रकाशन। इस कार्य के लिए एन.सी.ई.आर.टी. में साम्यवादी दृष्टिकोण के विद्वानों और इतिहासकारों को नियुक्त किया गया। इतिहास और अन्य पाठ्यपुस्तकों के लेखनार्थ एन.सी.ई.आर.टी. ने एक परिपत्र निकाला – Guide Lines for Writing Text Books.

लेखन के मार्गदर्शक बिन्दु

(१) इस देश की संस्कृति मिश्रित (Composite Culture) है। इसके अनुसार इतिहास और अन्य शैक्षिक पुस्तकों का लेखन होना चाहिए।

(२) शिवाजी का अधिक गुणगान नहीं होना चाहिए।

(३) औरंगजेब को अत्याचारी के नाते नहीं दर्शाना चाहिए, अपितु उसने हिन्दुओं के लिए मंदिर बनाकर दिए। उसी प्रकार के अन्य धर्मनिरपेक्षतावादी बिन्दु परिपत्र में थे। इन बिन्दुओं के प्रकाश में पाठ्यपुस्तकों का लेखन व प्रकाशन शुरू हुआ।

इस योजना को कार्यान्वित करने के लिए देश के सभी विश्वविद्यालयों और अन्य शिक्षा संस्थाओं में साम्यवादी और धर्मनिरपेक्षतावादी इतिहासकार और अन्य विद्वानों की नियुक्तियां की गयी।

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय

इस विश्वविद्यालय की स्थापना इस नई शिक्षा नीति को कार्यान्वित करने के लिए मार्गदर्शक विश्वविद्यालय के नाते की गई थी। इसके भी सभी विभागों में उपरोक्त दृष्टिकोण के प्राध्यापक नियुक्त किए गए।

इण्डियन कांउसिल ऑफ हिस्टॉरिकल रिसर्च और शिक्षा की अनुसंधानवादी संस्थाओं में साम्यवादी इतिहासकारों की संख्या में अनपेक्षित वृद्धि हो गई।

इस साम्यवाद पर आधारित धर्मनिरपेक्षतावादी नई शिक्षा नीति की योजना में यह भी प्रस्ताव था कि Army Commissioned Officers का प्रशिक्षण भी देहरादून के बजाए नेहरू विश्वविद्यालय में होना चाहिए ताकि सेना को भी धर्मनिरपेक्ष बनाया जा सके। अंग्रेजों द्वारा राजसत्ता के प्रदान के साथ अंग्रेजों द्वारा किए गए विकृतिकरण को दूर कर कांग्रेस भारत के इतिहास का राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में पुनर्लेखन करती, परन्तु यह तो उसने किया नहीं और अंग्रेजों द्वारा किए गए विकृतिकरण को मान्यता दे दी। उसके अनुसार जितना अपने देश के इतिहास का विकृतिकरण अंग्रेजों के राज्य में हुआ था उससे भी कई गुना अपने स्वतन्त्रता के काल में हुआ है और हो रहा है। एन.सी.ई.आर.टी. के मार्गदर्शन में नई शिक्षा नीति की इतिहास की पुस्तकों में विकृतिकरण के मुख्य-मुख्य उदाहरण इस प्रकार हैं।

१. राणा प्रताप, गुरुगोविन्दसिंह और शिवाजी रास्ता भूले देशभक्त थे।

२. अकबर देश को एकताबद्ध कर रहा था, परन्तु राणा प्रताप ने उसे सहयोग नहीं दिया।

३. सिखों के गुरु, जिन्होंने हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए अपना शीश दिया, डाकू थे।

४. आर्य गाय का मांस खाते थे।

५. आर्य लोग विदेशी थे। वे आक्रमक के नाते भारत में आए। यह उनका देश नहीं है।

६. भारत एक उपमहाद्वीप है। इसमें कई संस्कृतियाँ और अनेक राष्ट्र हैं। इस नई शिक्षा नीति के अनुसार अपने देश के इतिहास, साहित्य और महापुरुषों को धर्मनिरपेक्षता के सांचे में ढालने के प्रयत्न समाजवादी नेता जवाहरलाल नेहरू के मार्गदर्शन में शुरू हुए। यह अभियान गतिशील हो रहा था, परन्तु इसके जनक और प्रेरणास्रोत श्री जवाहरलाल नेहरू जी का सन् १९६४ में देहावसान हो गया। उनके बाद कांग्रेस धीरे-धीरे विघटित होने लगी और उसके हाथ से सत्ता निकल जाने के कारण इस अभियान की गति में अवरोध उत्पन्न हो गया, परन्तु विकृतिकरण किसी न किसी रूप में चल ही रहा है।

आरोपों का निराकरण

पाश्चात्य ईसाइयों, मुस्लिम दरबारियों और उनके अनुयायी भारतीय साम्यवादियों और धर्मनिरपेक्ष इतिहासकारों का यह आरोप कि भारत का अपना कोई इतिहास नहीं है और हिन्दुओं को इतिहास लेखन की कला नहीं आती थी, पूर्णतः मिथ्या है और उनके भारत के इतिहास के घोर अज्ञान पर आधारित है।

इतिहास शास्त्र के प्रथम संस्थापक ब्रह्मा जी

देवताओं के आध्यात्मिक और शैक्षिक साम्राज्य के विश्व के प्रथम सम्राट ब्रह्मा जी ने विश्व में सर्वप्रथम इतिहास शास्त्र की स्थापना कर इतिहास के दो ग्रंथ **'ब्रह्मसंहिता'** और **'महापुराण'** लिखे और इतिहास के प्रचार-प्रसार और लिखने का दायित्व अपने उत्तराधिकारियों को दिया। यह घटना भारतीय इतिहास के प्रथम कालखंड देवयुग की है। उस समय यह पृथ्वी एक द्वीपा थी। अतः जब इतिहास शास्त्र की स्थापना ही सर्वप्रथम भारत में हुई तो यह कहना कि भारत का अपना कोई इतिहास नहीं है और हिन्दुओं को इतिहास लिखने की शैली नहीं आती थी, पूर्णतः मिथ्या और स्वार्थप्रेरित सिद्ध हो जाता है।

इतिहास के प्रचार -प्रसार की स्थायी व्यवस्था

गुरुकुलों की स्थापना

वर्तमान श्वेतवाराह कल्प के प्रथम मनु, स्वांभुव मनु ने ज्ञान-विज्ञान के लिए गुरुकुलों की भारत में स्थापना की। इतिहास के प्रचार के लिए उसने ब्रह्मा के तत्कालीन उत्तराधिकारी से इतिहास की चार लाख श्लोकों की पुस्तक प्राप्त कर उसकी प्रतियां बनवाकर गुरुकुलों के प्राचार्यों को दी और इतिहास लिखने और उसके प्रचार का दायित्व इन गुरुकुलों के आचार्यों को दिया।

इतिहास के लेखन और प्रचार की यह पद्धति काफी समय तो चलती रही। आगे चलकर विश्व के प्रथम भारतीय चक्रवर्ती सम्राट महाराजा पृथु ने जिसके कारण इस ग्रह को पृथ्वी का नाम मिला है, ज्ञान-विज्ञान और इतिहास के प्रचार के लिए अपनी राजधानी माहिष्मती में विद्वानों की बड़ी सभा का आयोजन किया। गुरुकुलों के आचार्यों द्वारा लिखित इतिहास के प्रचार-प्रसार में उनका सबसे बड़ा योगदान था। इतिहास के प्रचार के लिए स्थायी व्यवस्था का निर्माण किया । इसके लिए उन्होंने इतिहास के ज्ञान के प्रचार और प्रशिक्षण का पूर्ण दायित्व 'मागध' और 'सूत' नामक दो जातियों को

दिया। वर्ष के ८ मास घर-घर में जाकर इतिहास के प्रचार का कार्य उनको सौंपा गया। वर्ष के शेष ४ मास वे अपने परिवारों की देखभाल करते थे। जीवन-निर्वाह के लिए महाराजा पृथु ने मागध को मगध और सूत को तेलंगाना जागीर में दे दिए। इतिहास के लेखन और संशोधन का कार्य इतिहासकारों पर छोड़ दिया। अतः महाराजा इक्ष्वाकु से महाभारत तक ऐसे विश्वविख्यात ३० इतिहासकार हुए हैं। वेद व्यास, गर्ग और जैमिनी के नाम भी इन ३० में से हैं।

आगे चलकर इतिहास के प्रचार-प्रचार की इस स्थायी योजना में कथावाचक, वृत्तलेखक, भाट, चारण, ढाडी और मिरासी हुए, जो आज भी विद्यमान हैं।

भारतीय चिंतन शास्त्र में इतिहास का महत्व

१. महाभारतकार वेदव्यास ने इतिहास को पंचमवेद कहा है– 'इतिहासपुराणं पंचमो वेदः'

२. यह भी कहा गया है कि वेद की व्याख्या इतिहास-पुरुष से करनी चाहिए।

३. प्राचीन भारत में विद्वता का लक्षण इतिहास के ज्ञान पर आधारित था।

४. संपूर्ण भागवत को सुनाने के पश्चात् भगवत्पाद श्री शुकदेव ने परीक्षित को कहा–हे 'परीक्षित! स्वायंभुव मनु से लेकर अद्यवत् जो १६५ करोड़ वर्षों का इतिहास मैंने आपको सुनाया है, इसको तुम वाणी का विलास और वैभव मत समझना। इस पृथ्वी पर बड़े-बड़े पुरुष अपने तेज और यश की गाथाएं छोड़ गए। इनमें जीवन का परम रहस्य, विज्ञान और वैराग्य निहित है –

कथा इमास्ते कथिताः महीयसां ।
विताय लोकेषु यशः परेयुषाम् ।
विज्ञानवैराग्यविवक्षया विभो
वचोविभूतिर्न तु-पारमार्थ्यम् ।।

५. प्राचीन भारत में प्रत्येक हिन्दू राजा के लिए इतिहास का ज्ञान अनिवार्य था।

६. धार्मिक अनुष्ठानों, विवाहों, अश्मेध, राजसूय यज्ञों में इतिहास का वाचन आवश्यक था।

७. इतिहास लिखने के लिए प्रत्येक हिन्दू राजा के दरबार में वृत लेखक, चारण, भाट नियुक्त होते थे।

८. प्रत्येक राजवंश के कुलपुरोहित का भी दायित्व था कि वह राजवंश के इतिहास का लेखन करें। यथा गर्ग यादवों के कुलपुरोहित थे। बृहस्पति देवताओं के कुलपुरोहित थे और शुक्राचार्य असुरों के।

९. तीर्थ स्थानों पर राजवंशों, परिवारों के पंडे उनकी यात्रओं के वृत लिखते थे और यह परम्परा वर्तमान में भी प्रचलित है। उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट होता है कि हिन्दू समाज जीवन में इतिहास का कितना बड़ा महत्व है। इस वास्तविकता को अनदेखा करना या दुर्लक्ष करना या छुपाना एक बड़ा अन्याय है। अंग्रेज इतिहासकारों का यह कटाक्ष कि भारत की जलवायु गर्म होने के कारण यहां के लोग प्रायः सुस्त, आलसी, दीर्घसूत्री और पराक्रम शून्य होते हैं और इसी कारण यहां शीत प्रधान देशों की ओर से आक्रमण होते रहे। वास्तविकता इनसे उल्ट है और उसके कुछ उदाहरण नीचे दिए जा रहे

हैं –

१. चन्द्रगुप्त मौर्य इसी देश की जलवायु में उत्पन्न हुए थे। उसने सिकंदर के साम्राज्य के पश्चिम के भारतीय क्षेत्रों के उत्तराधिकारी सेल्यूकस को युद्ध में पराजित कर उसके सारे इलाके छीन लिए। तब सेल्युकस ने अपनी सुपुत्री को विवाह में चन्द्रगुप्त को देकर उससे संधि की थी।

२. भारत के इतिहास के क्षात्र युग में ४० चक्रवर्ती सम्राट हुए हैं। चक्रवर्ती सम्राट का जब राज्याभिषेक होता था तो वह सप्तद्वीपेश्वर (सप्त महाद्वीपों का सम्राट) की शपथ लेता था। रामचंद्र जी भी चक्रवर्ती सम्राट थे। अंतिम चक्रवर्ती सम्राट महाराजा युधिष्ठिर थे। वे सारे एशिया के चक्रवर्ती सम्राट थे। उस समय सारा एशिया हिन्दू था।

३. शिवाजी महाराज – महाराष्ट्र में उत्पन्न हुए और उन्होंने अपने देश को स्वतंत्र करने के लिए विदेशी मुगल साम्राज्य के विपक्ष में २५५ युद्ध लड़े। उनके शौर्य का कीर्तिमान है कि वह न तो किसी युद्ध में पराजित हुए और न ही जख्मी हुए।

४. सरदार हरिसिंह नलवा महाराजा रणजीत सिंह के सेनापति थे। उनके शौर्य की आज भी अफगानिस्तान में धाक है। वहां की पठान माताएं अपने बच्चों को चुप कराने के लिए कहती हैं **'खामोश वाश, हरिसंह नलवा आयेद'- चुप करो, हरिसिंह नलवा आ रहा है।** ८वीं शताब्दी से १८ वीं शताब्दी तक मुस्लिम अत्याचारों की नदी पश्चिम से पूर्व की ओर बहती रही, परन्तु लोग १९वीं सदी के सेनापति उस वीर के दर्शन करने के लिए महाराजा रणजीत सिंह की राजधानी लाहौर में आते थे कि वह कौन-सा वीर है जिसने यह महान कार्य किया है।

हरिसिंह नलवा को समाप्त करने के लिए मुसलमानों ने अंतिम जिहाद की तैयारी की और उनका मुखिया पश्चिम पंजाब की मुस्लिम रियासत कल्लान के नवाब के पास आशीर्वाद लेने गया। उसने नवाब से निवेदन किया कि यह काफिर हरिसिंह नलवा मुस्लिम जाति को समाप्त करता जा रहा है। हम सारे एकत्रि होकर इसको समाप्त करने के लिए मार्गदर्शन के लिए आपके पास आए हैं, आगे इनशा अल्लाह। नवाब ने उत्तर दिया कि तुम एकत्रित होकर आए हो, यह तो ठीक है, परंतु तुमने यह जो इनशा अल्लाह कहा है, यह ठीक नहीं है। मुखिया बोला कि हम मुसलमानों का कोई भी काम अल्लाह के आशीर्वाद के बिना पूरा नहीं होता है। नवाब ने कहा कि पहले अल्लाह के द्वारा काम होते थे, अब नहीं होते हैं। मुखिया ने पूछा कि अल्लाह कहां चले गए? नवाब ने कहा वह जहां थे, वहीं पर हैं, परन्तु उनके आशीर्वाद से अब काम नहीं होते हैं क्योंकि वह हिन्दू हो गए हैं। उस नलवा वीर ने इतना पराक्रम किया कि अल्लाह को भी हिन्दू बना दिया। वह तो पंजाब की गर्म जलवायु में ही पैदा हुआ था।

इनता ही नहीं गुरु गोविंद सिंह, राणा प्रताप, छत्रसाल, दुर्गादास राठौर और असम के लाचित बरफुकन के शौर्य की गाथाएं विश्वविख्यात हैं।

अंग्रेजों ने इतिहास को विकृत कर यह भी प्रचार किया कि वर्तमान में जो हिन्दू हैं, इनका पूर्व

का नाम आर्य है। इनके पूर्वज मध्य एशिया में रहते थे और वह वहां से ३५०० वर्ष पूर्व आक्रमक के नाते भारत आए, परंतु यह देश इनका नहीं है, वह भी विदेशी हैं। किन्तु अब पुरातात्त्विक खोजों, वैज्ञानिक अनुसंधानों, सरकारी-गैरसरकारी माध्यमों, राष्ट्रीय परिसंवादों और अन्य साक्ष्यों के द्वारा यह प्रमाणित हो चुका है कि भारत में लोग बाहर से नहीं आए, अपितु भारत से अन्य देशों में गए हैं। आर्यों की आदि जन्मभूमि भारत ही है इसके लिए महाभारत और मनुस्मृति के निम्नलिखित साक्ष्य अत्यंत महत्वपूर्ण हैं –

'हिमालयमिषाणोज्ये ख्यातम् लोकेषु पावन
अर्धयोजनविस्तीर्णः पंचयोजनमायत।
परिमंडलयोर्मध्ये मेरुत्तामः पर्वतः
ततः सर्व समुत्पन्ना वृत्तियां द्विजसत्तामः ।। (महाभारत)

अर्थात् संसार में पवित्र हिमालय विख्यात है। उसमें अर्ध योजन चौड़ा और पांच योजन घेरे वाला उत्तम सुमेरू पर्वत है, जहां सम द्विजों की उत्पत्ति हुई।

जब उपरोक्त भारत के सुमेरु पर्वत पर मानवोत्पत्ति हुई और सब जातियों, सब राष्ट्रों, सब धर्मों, सब शास्त्रों और सारे ज्ञान-विज्ञान का उदय यहीं भारत से हुआ, तो किसी के बाहर से आने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता।

'आ समुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात्।
तयोरेवान्तरं गिर्योरार्यावर्तं विदुर्बुधाः।। मनुस्मृति-२/२२

अर्थात् जिस क्षेत्र के पूर्व और पश्चिम में समुद्र है, जो पर्वतों के मध्य है तथा घिरा हुआ है वह सरस्वती तथा दृषद्वती नदियों के अंतर में स्थित है। वह देव निर्मित आर्यावर्त देश हैं

उपरोक्त श्लोक से यह स्पष्ट होता है कि भारत के पूर्व और पश्चिम में समुद्र है। सरस्वती और दृषद्वती (ब्रह्मा की इरावती) नदियां उसमें बहती थी। अतः यही भारत, आर्यों की आदि जन्मभूमि है।

उपरोक्त दोनों श्लोकों से स्पष्ट होता है कि भारत ही आर्यों का मूल स्थान और तत्संबंध में जो विभिन्न सिद्धांतों का आविष्कार पाश्चात्य इतिहासकरों ने किया है, उनका कहीं भी कोई साक्ष्य वैज्ञानिक और पुरातात्त्विक खोजों में उपलब्ध नहीं है।

आर्यों का आदि देश भारत ही है, ऐसा स्वामी विद्यानंद सरस्वती ने अपनी पुस्तक **'आर्यो का आदि देश और उनकी सभ्यता'** में सिद्ध किया है। संपूर्णानंद ने आर्यों का आदि देश सप्त सिन्धु अर्थात् भारत ही बताया है। इसलिए आर्यों के आक्रमण का मिथ्या सिद्धांत अब भूमिसात् हो चुका है। इसमें कोई दम नहीं है।

भारत एक देश नहीं अपितु यह उपमहाद्वीप है, यह प्रचार भी अंग्रेजों द्वारा और बाद में उनके हस्तक मुस्लिम लीग के नेता जिन्ना के द्वारा किया गया। भारत का वर्णन अथर्ववेद में मातृभूमि के रूप में है। इसकी प्रशंसा में ६३ श्लोक दिए गए हैं। प्रत्येक श्लोक में मातृभूमि की विशेषता का वर्णन है और अंत में प्रणाम है। हिन्दू आदिकाल से भारत को अपनी मातृभूमि, पुण्यभूमि और कर्मभूमि के रूप

में पूजते आए हैं। राष्ट्रीय जीवन की अधिष्ठात्री मातृभूमि ही होती है। और इसी कारण हिन्दू अपने को इसकी संतान मानते हैं। अतः भारत अखंड, अविभाज्य, एक सूत्र और एकरस देश है, उपमहाद्वीप नहीं।

एक हजार वर्षीय हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष में हिन्दुओं के प्रतिरोध के शौर्य की महत्वपूर्ण घटनाओं को दरबारी मुस्लिम इतिहासकारों व उनके समर्थक साम्यवादी और धर्मनिरपेक्ष इतिहासकारों ने छुपाने या दुर्लक्ष करने के जो प्रयत्न किए हैं, उनकी वास्तविकता स्थानीय इतिहास की पुस्तकों में उपलब्ध है। इसके संबंध में काफी साहित्य प्रकाशित हो चुका है। उसे प्राप्त कर उसका अध्ययन करना चाहिए।

संदर्भ पुस्तकें :

१. तारीख-ए-राजगाने कदीम आर्यवर्त

२. प्राचीन भारत का प्रामाणिक इतिहास

३. विश्व की कालयात्रा

४. भारतीय कालगणना का वैज्ञानिक एवं वैश्विक स्वरूप

५. Birth-Dates of Budha

६. भागवत पुराण

७. भारतीय इतिहास शास्त्र और कालक्रम

राष्ट्रीय महापर्व : वर्ष प्रतिपदा

वर्ष प्रतिपदा चैत्र मास के शुक्ल पक्ष के प्रथम दिन प्रतिवर्ष आती है। अपने देश के घर-घर में वर्ष प्रतिपदा का पर्व बड़े उल्लास और श्रद्धा के साथ मनाया जाता है। इसीलिये इस पावन दिवस को राष्ट्रीय महापर्व का महत्त्व प्राप्त है। ज्योतिष विद्या के प्रसिद्ध ग्रन्थ हेमाद्रि में उल्लिखित है कि सृष्टिकर्ता ब्रह्मा ने सृष्टि की रचना चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को आरम्भ की थी। ब्रह्म पुराण में भी इसी प्रकार का उल्लेख है –

चैत्र मासि जगद् ब्रह्मा ससर्ज प्रथमेऽह्नि।
शुक्लपक्षे समग्रं तु तदा सूर्योदये सति।।

अर्थात् ब्रह्मा जी ने चैत्र मास में शुक्ल पक्ष के प्रथम दिन सूर्योदय काल में सृष्टि की रचना की है। विश्वविख्यात वैज्ञानिक भास्कराचार्य अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ सिद्धांत शिरोमणि में लिखते हैं कि चैत्र मास के शुक्ल पक्ष के प्रारम्भ में रविवार के दिन से मास, वर्ष एवं दिन एक साथ आरम्भ हुए हैं। यही कारण है कि भारतवर्ष में प्रचलित अनेक सम्वत् चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को ही शुरू होते हैं। सृष्टि रचना के क्रमिक विकास में १ अरब, ६७ करोड़, २६ लाख, ४६ हजार, ११० वर्ष पूर्व (ईस्वी सन् के अनुसार) भारत भूमि पर चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को ही पहले मानव का आविर्भाव हुआ है। इस दृष्टि से यह दिन केवल हिन्दुओं के लिए ही नहीं अपितु सारे मानवकुल के लिए माननीय है।

कालान्तर में इस दिन के साथ राष्ट्रीय महत्त्व की कुछ ऐसी घटनाएं जुड़ गई जिससे इस पर्व को समाज में अत्यधिक आस्था और मान्यता प्राप्त हुई। जैसे सतयुग में जगत के त्राण के लिए भगवान् विष्णु ने इसी दिन मत्स्य रूप में पहला अवतार ग्रहण किया। स्मृतिकौस्तुभ ग्रन्थ में लिखा है –

कृते व प्रभवे चैत्रे प्रतिपच्छुक्लपक्षगा।
मत्स्यरूपकुमार्यां व अवतीर्णो हरि स्वयम्।

वर्ष के प्रथम नवरात्रों का आरम्भ भी चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से ही होता है। इन्हें वासन्तिक नवरात्रे कहते हैं। इसके अतिक्ति यह नवरात्रे राम नवरात्रे भी कहलाते हैं क्योंकि इन नवरात्रों में चक्रवर्ती सम्राट मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान रामचन्द्र का जन्म दिन 'राम नवमी' का पर्व आता है तथा भारतीय मान्यता के अनुसार आज से १ करोड़ ८५ लाख वर्ष पूर्व रामचन्द्र जी का राज्याभिषेक भी इसी नवरात्र के पहले दिन वर्ष प्रतिपदा को हुआ था।

एक अन्य घटना चक्रवर्ती सम्राट विक्रमादित्य से सम्बधित है। उन्होंने विदेशी आक्रामक शकों को पराजित कर देश को चारों ओर से सुरक्षित कर के परम वैभव तक पहुंचाया। बाद में देश को ऋणमुक्त कर अपने नवरत्न और ज्योतिषों से परामर्श करके उन्होंने प्रयागराज में वात्स्यायन भारद्वाज की अध्यक्षता में आयोजित धर्मसभा में आज से २०६५ वर्ष पूर्व (ईस्वी सन् के अनुसार) इसी चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से अपने नाम पर विक्रम सम्वत् शुरू किया था। इसी प्रकार महाराष्ट्र प्रतिष्ठानपुर के शासक शालिवाहन ने शकों को पूरी तरह नष्ट करके आज से १९३० वर्ष पहले शक सम्वत् शुरू करने का अधिकार प्राप्त किया था। महाराष्ट्र आदि प्रान्तो में शक सम्वत् का बहुत प्रचलन है। इस सम्वत् का शुभारम्भ भी चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को होता है। महाराष्ट्र, गोवा आदि प्रान्तों में इस दिन को गुडी पड़वा पर्व के रूप में मनाया जाता है।

सिन्ध के हिन्दू धर्म रक्षक सन्त सिपाही झूले लाल का जन्म सिन्ध के नसरपुर नगर में चैत्र शुक्ल द्वितीया, सम्वत् १००७ को शुक्रवार के दिन हुआ था। प्रतिवर्ष इनका जन्मोत्सव वर्ष प्रतिपदा से ही मनाया जाता है। सन्त सिपाही झूलेलाल का वास्तविक नाम उदयचन्द्र था परन्तु जब वे घोड़े पर चढ़कर भगवा ध्वज हाथ में लेकर युद्ध क्षेत्र में कूच करते थे तो मस्ती में झूलते थे। इसी कारण इनका नाम झूलेलाल पड़ा। इतना ही नहीं 'आया लाल झूले लाल' यह उस समय का जंगी नारा बन गया था। जब कभी युद्ध में यह नारा गूंजता था तो अत्याचारी मुस्लिम सेना भयभीत होकर भाग जाती थी।

आर्य संस्कृति के पुनरुत्थान के लिए स्वामी दयानन्द ने मुम्बई में ईस्वी सन् १८७५ अर्थात् कलियुगाब्द ४९७७ के वर्ष प्रतिपदा के दिन ही आर्य समाज की स्थापना की। भारत राष्ट्र की सनातन हिन्दू संस्कृति के पुनर्जागरण के पुरोधा एवं विश्व की सबसे बड़ी स्वयंसेवी संस्था राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के निर्माता परम पूजनीय डाक्टर केशवराव बलिराम हेडगेवार का जन्म भी कलियुगाब्द ४९९१ तदनुसार ईस्वी सन् १८८९ को चैत्र शुक्ल प्रतिपदा के दिन ही हुआ था।

उपरोक्त उल्लेखित प्रसंगों और घटनाओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि चैत्र शुक्ल प्रतिपदा का दिन हमारी धार्मिक और ऐतिहासिक परम्पराओं से जुड़ा हुआ है। यह हमारी अस्मिता की पहचान और आत्म-गौरव का दिन है परन्तु भारत वर्ष को जो दासता की लम्बी अवधि झेलनी पड़ी, उससे समाज में मानसिक दासता भी पैदा हुई। इसी दासता भाव का परिणाम है कि हमारे देश में बहुत अधिक लोग चैत्र शुक्ल प्रतिपदा के स्थान पर पहली जनवरी को ही नववर्ष दिवस मनाते है। वे भूल जाते हैं कि यह दिन हमारे लिए किसी भी प्रकार से राष्ट्रीय गौरव का दिन नहीं है।

ईरान का उदाहरण

ईस्वी सन् २००१ के प्रथम दिन पहली जनवरी को ईरान के कुछ मुसलमानों ने नव वर्ष दिवस समारोह आयोजित किया। उनके इस अपराध के लिये वहां की सरकार ने उन्हें पचास-पचास कोड़े मारने का दंड दिया था। समारोह में सम्मिलित सभी पुरुषों और महिलाओं को यह सजा भुगतनी पड़ी।

सरकार का कहना था कि पहली जनवरी ईसाइयों के नववर्ष का दिन है- मुसलमानों का नहीं। समाचार पत्रें में प्रकाशित यह घटना क्या हमारे लिये पाठ नहीं है? अतः हम भारत के नागरिक पहली जनवरी के स्थान पर चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को अपना भारतीय नया वर्षारम्भ मनाकर आत्मगौरव का अनुभव कर सकते हैं। हमें ईरान की भांति अपने संवत्सर का महत्त्व समझना चाहिए।

राष्ट्रीय महापर्व

घर-घर में मनाया जाने और पूर्व उल्लिखित जो महत्त्वपूर्ण घटनाएं इसके साथ जुड़ी हुई हैं, उनके कारण जैसा कि प्रारम्भ में कहा गया है, वर्ष प्रतिपदा को समाज में राष्ट्रीय महापर्व का स्थान प्राप्त हो गया है। अतिपवित्र और वैज्ञानिक होने से इस दिवस के उपलक्ष्य में अनेक धार्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक अनुष्ठानों का आयोजन होता है — यथा सत्यनारायण कथा, भागवत पाठ, रामायण पाठ, शिलान्यास, नवीन संस्थारम्भ इत्यादि।

मुख्य कार्यक्रम-वर्ष फल पाठ

नए वर्ष के इस नए दिन हर हिन्दू घर में नव वर्ष के फल के पाठ का आयोजन होता है। परिवार के सभी सदस्य स्नान कर नए वस्त्र धारण कर के घर में एक स्थान पर एकत्रित होते हैं। कुल पुरोहित आता है, वह नए वर्ष का पंचांग खोल कर वर्ष के फल का पाठ करता है। नव वर्ष का राजा कौन है, मंत्री कौन है, इस वर्ष उद्योग-धन्धे, कृषि वर्षा के क्या योग है; देश की सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और राजनैतिक अवस्था कैसी रहेगी आदि सब बातों का समावेश खगोलशास्त्र के आधार पर बने वर्षफल में होता है। इसके अतिरिक्त नव वर्ष में घटित होने वाली सम्भाव्य अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं का भी उल्लेख इस वर्षफल में होता है।

इस शुभ दिन के उपलक्ष्य में घरों की सफाई कर उनको सजाया जाता है। पताकाएं-विशेषतः भारतीय संस्कृति के प्रतीक भगवा ध्वज को घर पर लहराया जाता है। चाय-पान और भोजों के कार्यक्रमों पर अपने सम्बंधियों और मित्रों को निमंत्रित किया जाता है।

आमोद-प्रमोद, हर्षोल्लास के अनेक कार्यक्रमों और उनकी रचना की विधि में विविधता रहती है; किन्तु योजना करते समय वर्ष प्रतिपदा के उत्सव के मूल तत्त्व का ध्यान अवश्य रखा जाता है।

कालतत्त्व पर आधारित भारतीय कालगणना विश्व में अद्वितीय है। राष्ट्रीय महापर्व वर्ष प्रतिपदा इसी कालगणना का उत्सव है। भारतवासियों के लिए तो यह दिन अत्यन्त आत्मगौरव का दिन है ही, इसके सभी पक्षों पर विचार करें तो इस दिवस का वैश्विक महत्त्व सिद्ध होता है।

महात्मा बुद्ध का युग

जन्म-कलियुगाब्द १५१९ (ई०पू० १५८३) मृत्यु-कलियुगाब्द १५९९ (ई०पू० १४९३)

इतिहास का लेखन कालक्रम के बिना कठिन ही नहीं अपितु असंभव है। भारत के इतिहास का विषय प्रवर्तन कोई दो चार हज़ार वर्षों के कालप्रवाह से नहीं, वह हिरण्यगर्भ की संरचना के कालबिंदु से होता है। भारतीय चितंन दर्शन में काल और इतिहास दो नहीं, इनमें बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव है। यदि काल बिम्ब है तो इतिहास उस का प्रतिबिम्ब है। यदि इतिहास बिम्ब है तो काल प्रतिबिम्ब है। जो काल है वही इतिहास है, जो इतिहास है वही काल। यहां भारतीय इतिहास की तत्व दृष्टि और परम्परा दोनों का ही विषय-प्रवर्तन विश्व की संरचना के मूल आधार से होता है।

अतः काल के तत्व की अवधारणा के अनुसार भारत का १९७ करोड़ वर्षों का दीर्घतम इतिहास युगों की वैज्ञानिक हिंदू कालगणना के आधार पर १४ मन्वंतरों में विभक्त है। इनमें से ६ मन्वन्तर पार हो चुके हैं और सातवें वैवस्वत मन्वंतर का १२ करोड़ ५ लाख ३३ हज़ार ३ सौ दसवां वर्ष चल रहा है।

कालतन्त्व और पश्चिम का इतिहास बोध

पाश्चात्य जगत में काल के तत्त्व की अवधारणा पहले से ही अस्पष्ट रही है और अब भी स्पष्ट नहीं है। १४ वीं शताब्दी तक यूरोप को गिनती करनी नहीं आती थी। जब हिन्दू गणित ने यूरोप की यात्रा की तब हिन्दुओं ने यूरोप को गिनती करनी सिखाई। १७ वीं शताब्दी तक वर्तमान क्या है, उसका भूतकाल और भविष्य से क्या संबंध है, इसकी भी जानकारी यूरोप को नहीं थी। जब भारतीय विद्याओं ने यूरोप की विद्यापीठों में प्रवेश किया तब भूत, वर्तमान और भविष्य का अर्थ पाश्चात्यों को समझ में आया।

अतः पाश्चात्य जगत में काल के तत्त्व की अवधारणा स्पष्ट न होने के कारण वहां का इतिहास—बोध बाईबल की धार्मिक अवधारणा कि विश्व की उत्पत्ति ६००० हज़ार वर्ष पूर्व हुई, पर आधरित है। इसी कारण वहां का इतिहास युगात्मक नहीं है।

भारतीय इतिहास का तत्त्वदर्शन काल के तत्त्व पर आधारित होने के कारण यहां का १९७ करोड़ वर्षों का इतिहास काल तत्त्व की, महायुग, मन्वतंर, कल्प और महाकल्प की वैज्ञानिक प्रक्रियाओं के अनुसार लिखा गया है।

ज्ञान-विज्ञान के गूढ़ रहस्यों और इतिहास की गुत्थियों को सुलझाने के लिए हमारे ऋषि-मुनियों ने सत्य कथाओं, प्रतीकों और रूपकों का उपयोग किया है। काल के तत्त्व के ज्ञान के अभाव में उनका अर्थ समझना संभव नहीं है। यही कारण है कि यूरोप के इतिहासकार इतिहास लेखन की भारतीय शैली को समझ न सके।

पाश्चात्य इतिहासकारों के भारतीय इतिहास लेखन के प्रयत्न

एशिया और विशेषतः भारत के इतिहास लेखन के लिए अंग्रजों ने दो संस्थाओं का निर्माण किया—रॉयल एशियाटिक सोसायटी लंदन और एशियाटिक सोसायटी कोलकत्ता।

इतिहास लेखनार्थ नवीन ईसाई कालक्रम का अविष्कार

विलियम जोन्स सन् १७७३ में ईस्ट इण्डिया कंपनी का अधिकारी नियुक्त होकर भारत आया। वह इतिहास का विद्वान था। भारत के इतिहास को लिखने के लिए उसने सन् १७८४ में कोलकत्ता में एशियाटिक सोसायटी की स्थापना की। भारत के इतिहास को जानने के लिए उसने अपने निजी सचिव पं0 राधाकान्त से संस्कृत सीखी और उसकी सहायता से भागवत पुराण पढ़ा। इतिहास लेखन के लिए कालक्रम आवश्यक है, इस दृष्टि से उसने पहले युगों की हिन्दू कालगणना के कालक्रम को स्वीकार किया परन्तु बाद में इसका परित्याग कर घोषण कर दी कि भारत के इतिहास में केवल सिकंदर के भारत पर आक्रमण करने की तिथि ३२७ ई0 पूर्व ही सत्य है। इतिहास लेखन के लिए इसे आधारभूत मान लिया गया। उसने इस नवीन कालक्रम का आविष्कार अठारहवीं शताब्दी के आठवें दशक में किया। यहां से ईसा पूर्व और ईसा बाद का ईसाई विदेशी कालक्रम आरम्भ हुआ। अतः वर्तमान में देश के महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में जो इतिहास पढ़ाया जाता है, वह विलियम जोन्स द्वारा अविष्कृत कालक्रम के अनुसार लिखा गया है।

काल निर्धारण

इस नवीन अभारतीय कालक्रम के अनुसार महात्मा बुद्ध के काल को निश्चित करने का प्रयत्न विलियम जोन्स ने शुरु किया। इसके लिए उसे इतिहास के यूनानी दस्तावेजों का अध्ययन करते समय दो नाम मिले—''सैंड्रा कोटस'' और ''पाली बोथा''। सैंड्रा कोटस को उसने राजधानी पाटलीपुत्र मान लिया। इस प्रकार मौर्य वंश जो ईसा पूर्व की सोलहवीं शताब्दी में हुआ उसको ईसा पूर्व की चौथी शती का घोषित कर दिया। मौर्य वंश के राजाओं की तिथियां पुराणों, जैन और बौध साहित्य में मिली। परन्तु वह तिथि निर्धारण के अपने नवीन कालक्रम के अनुसार उनको व्यवस्थित नहीं कर पाये। लंका में दो ग्रन्थ 'दीपवंश' और 'महावंश' मिले। उनमें लिखा था कि मौर्य वंश के राजा अशोक के राज्याभिषेक २६७ ई0 पू0 के २१८ वर्ष पूर्व बोधिसत्त्व निर्वाण को प्राप्त हुए। अतः उनके निर्वाण की

तिथि २६७+२१८=४८५ ई0 पू0 है और उनकी आयु ८० वर्ष हुई इसलिए उनका जन्म ४८५+८०=५६५ ई0 पू0 है। बाद में तिब्बत, चीन, लद्दाख, बर्मा के बौद्ध साहित्य में अन्य तिथियां मिलीं। उनका विचार कर यह तय किया गया कि उनका जन्म ६५३ ई0पू0 हुआ और निर्वाण ५४३ ई0पू0। तिथि निर्धारण के इस काल्पनिक जोड़ तोड़ के कारण इतिहासकारों ने अपनी-अपनी कल्पना और मनमाने ढंग से बुद्ध के जन्म की कई तिथियां निर्माण कर डाली। इसके कारण इतिहासकार एक चक्रव्यूह में पड़ गये।

इस नकली आविष्कृत कालक्रम के आधार पर पाश्चात्य इतिहासकारों ने भारत के इतिहास लेखन के लिए प्रायः ४०० वर्षों तक अपनी शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक शक्तियां लगाकर भरसक प्रयत्न किये परन्तु दुःख की बात है कि वे लेखन के इस अभियान में पूर्णतः असफल हुये। इसका कारण यह है कि भारत के १९७ करोड़ के इतिहास को उन्होंने ईसाई कालगणना के कालक्रम से जिसका अस्तित्व ही मात्र २००८ वर्षों का है, व्यवस्थित करना चाहा। परंतु यह प्रयास तो बुद्धि के पीछे डंडा लेकर भागने की बात है।

इसलिए तिथि निर्धारणार्थ उपरोक्त भूमिका के रूप में जो तथ्य दिये हैं उनका अध्ययन करना आवश्यक है। हमें यह भी पता होना अति आवश्यक है कि भारत के इतिहास में प्रत्येक महत्त्वपूर्ण घटना की तिथि दी है और उसका आधार युगों की वैज्ञानिक हिन्दू कालगणना है। उसकी जानकारी के बिना तिथि-निर्धारण असंभव है। इसके अतिरिक्त इतिहास लेखन की हिंदू शैली को भी समझना आवश्यक है।

इसके पूर्व यह प्रमाणित किया जा चुका है कि स्वामी आदिशंकराचार्य कलियुग २०८२ अर्थात् ई0पू0 १०१९ में पैदा हुए थे जिसको आज ३०२२ वर्ष का समय होता है। यूरोप के इतिहासकारों के अनुसार गौतम बुद्ध ई0 पू0 ५५७ में पैदा हुए थे। उनके निर्वाण की तिथि तो एक ही है, परंतु जन्म की तिथियां ३५ के लगभग हैं। श्रीराम साठे ने अपनी पुस्तक "The Birth - Dates of Budha" में इन सब तिथियों की सूची दी है। अब प्रश्न यह पैदा होता है कि जब बुद्ध पैदा ही नहीं हुए थे और उनके बौद्ध धर्म का अस्तित्व ही नहीं था तो उनके इस धर्म की आलोचना करने के लिए स्वामी शंकराचार्य ४६२ वर्ष पहले ही पैदा हो गये? इसका अर्थ यह है कि यूरोप के इतिहासकारों का बुद्ध का निर्धारित संवत भी अन्य संवतों के समान पूर्णतः गलत और वास्तविकता के विपक्ष में है।

यूरोप के कई इतिहासकार कहते है कि महात्मा बुद्ध ईसा से ५५० वर्ष पहले हुए। श्री हंटर कहते हैं कि उन्होंने ई0 पू0 ५४३ में शरीर त्यागा और उनकी आयु ८० वर्ष हुई। इसलिए वह ई0पू0 ६२३ में पैदा हुए। लंका के बौद्धों का भी यही मत है परंतु बुद्ध के जन्म का समय जिस जिस ने

स्थापित किया है, उसने यही लिखा है कि इसे सही नहीं समझना चाहिये। ऐसी स्थिति में इन कल्पनाओं, अस्पष्ट विचारों और भ्रमों पर आधारित सिद्धान्तों को दृष्टि से बाहर कर, संस्कृत साहित्य का ही अध्ययन कर बुद्ध की जन्म-तिथि निश्चित की जा सकती है।

सारे विद्वान इस बात पर कि कश्मीर के **महाराजा कनिष्क ने बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों और नियमों के संशोधन और संवर्धन के लिए एक सभा आयोजित की थी।** उसने १७४६ कलियुग से १८०६ कलियुग तक राज्य किया। यह जानकारी पंडित कल्हण की पुस्तक राजतरंगिणी से प्राप्त होती है। महाराज कनिष्क के बारे में यूरोप के इतिहासकार उलझन में पड़े हुए हैं। कई इसको विक्रमादित्य के बाद बताते हैं। परंतु **'गुजर देश भूयावली'** जो एक ऐसे लेखक ने लिखी जिसका कल्हण के साथ कोई संबधं नहीं था। उससे राजतरंगिणी के वृत्त का समर्थन होता है। 'गुजर देश भूयावली' में लिखा है कि कनिष्क ने संवत १८०५ कलियुग में गुजरात, काठियावाड़ को जीता और १८०६ कलियुग अर्थात् कनिष्क की मृत्यु तक यह क्षेत्र उसके साम्राज्य में रहा। इससे **स्पष्ट है कि बौद्ध धर्म कलियुग** १७४६ **अर्थात् ई०पू०** १३५२ **से बहुत समय पहले हिंदुस्थान में फैल चुका था।**

संवत् १८०६ कलियुग तदानुसार ई0 पू0 १२९२ में कनिष्क की मृत्यु के बाद उसका बेटा अभिमन्यु कश्मीर के सिंहासन पर बैठा। उसके समय में नाग अर्जुन बौद्ध और चंद्र आचार्य के बड़े शक्तिशाली वाद-विवाद हुए और सिद्ध नाग अर्जुन महात्मा बुद्ध का तेरहवां उत्तराधिकारी था। इससे बुद्ध के समय का अदांजा लगाया जा सकता है।

कल्हण लिखता है कि महाराजा कनिष्क के राज्यकाल में बुद्ध को निर्वाण प्राप्त किये १५० वर्ष बीत चुके थे। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि महात्मा बुद्ध ने १७४६-१५०=१५९६ कलियुगी संवत में निर्वाण प्राप्त किया क्योंकि उनकी आयु ८० वर्ष हुई इसलिए १५९६-८०=१५१६ कलियुग में वह पैदा हुए थे। उनकी आयु के ५०वें वर्ष बुद्ध संवत् आरंभ हुआ अर्थात् ई0 पू0 १५३२, कलियुग संवत् १५६६ में बुद्ध संवत् शुरु हुआ।

राजतरंगिणी के उर्दू के अनुवादक ठाकुर अच्छर चंद लिखते हैं कि लद्दाख के निवासी ९० प्रतिशत से अधिक बौद्ध हैं। वहां एक मंदिर **समीस का गुफा** के नाम से प्रसिद्ध है। यह बड़ा पवित्र माना जाता है। वहां प्रत्येक वर्ष मेला लगता है जिसमें चीन, तिब्बत के बौद्ध धर्म के विद्वान एकत्रित होते हैं। सन् १९०५ में वहां के एक पुजारी ने एक पुरानी पोथी पढ़कर सुनाई जिसमें बुद्ध के हालात लिखे थे। इससे यह ज्ञात हुआ कि महात्मा बुद्ध लगभग १६०० ई0 पू0 में पैदा हुए थे। उस पुजारी ने यह भी बतलाया कि बुद्ध धर्म चीन में १४०० ई0पू0 से जारी है। मैंने इस विषय के बारे में उनसे चर्चा की तो पुजारी ने अपने कथन के समर्थन में कई पुस्तकें मेरे सामने रखी। मैंने उन पुस्तकों में महात्मा बुद्ध और

बौद्ध धर्म के बारे में लिखी बातों को कल्हण और रत्नाकर की पुस्तकों से मिलाया तो मुझे यह स्पष्ट हुआ कि यूरोप के विद्वानों, अनुसंधानों और मतों की अपेक्षा पुजारी का कथन ठीक है। इसका कारण यह है कि पाश्चात्य इतिहासकारों ने भारत के इतिहास के बारे में कल्पनाओं से काम लिया है। अतः कल्पनाओं पर आधारित उनके कथन और निर्णय सत्य दस्तावेजों के सामने कोई महत्त्व नहीं रखते हैं।

अतः उपरोक्त तथ्यों पर आधारित निर्णय के अनुसार महात्मा बुद्ध का जन्म कलियुगाब्द १५१६ (१५८३ ई० पू०) उनकी मृत्यु कलियुगाब्द १५६६ (१६६३ ई० पू०) तथा उनके संवत् का आरंभ कलियुगाब्द १५६६ (१५३२ ई० पू०) में हुआ।

संदर्भ पुस्तकें :

१. तारीख-ए-राजगाने कदीम आर्यवर्त

२. प्राचीन भारत का प्रमाणिक इतिहास

३. विश्व की कालयात्रा

४. भारतीय कालगणना का वैज्ञानिक एवं वैश्विक स्वरूप

५. Birth-Dates of Budha

६. भागवत पुराण

७. भारतीय इतिहास शास्त्र और कालक्रम

हमारे साधु संत एवं समाज

हमारी पुण्य भूमि भारत में सनातन धर्म की परम्परा के अनुसार समय-समय पर अनेक आचार्यों और साधु-सन्तों ने जन्म लिया है, परन्तु समाज में उनके बारे में यह मूल धारणा प्रचलित है कि वे साधु-संत प्रभु भक्ति में लीन रहते थे और उनका एकमात्र उद्देश्य रहा है आत्म कल्याण तथा समाज से उन्हें कोई लेना-देना नहीं था। परंतु यह विचार पूर्णतः असत्य है। समाज पर जब भी विदेशी या आंतरिक संकट आया है तो संतों ने समाज को जागृत करने और एकता के सूत्र में बान्ध कर समाज को जगाने के भरसक प्रयत्न किये हैं। समाज में आई कुरीतियों और विकृतियों को दूर कर धर्म के वास्तविक स्वरूप को जन भाषा में प्रचारित कर जन-जन तक पहुंचाया है। इतना ही नहीं साधारण स्थिति में भी साधु-सन्तों और सन्यासियों के जीवन का उद्देश्य चौबीसों घंटे समाज की निष्काम और निस्वार्थ भाव से सेवा करना है। भारत का इतिहास ऐसे उदाहरणों से भरा पड़ा है जब समाज विदेशी आक्रमणों से त्रस्त होकर निराश हो गया और उसे संकटों से मुक्ति का कोई उपाय नहीं सूझता था। उस काल में भी तो इन्हीं सन्तों ने समाज के संकटों का निवारण किया है। इस सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक उदाहरण निम्नलिखित है –

गैर क्षात्र दल का निर्माण : महाभारत के युद्ध में बहुत बड़ा नरसंहार हुआ और ज्ञान-विज्ञान की अपूरणीय क्षति हुई। अतः युद्ध के बाद देश में शान्ति के आन्दोलन जैन समाज और बुद्ध धर्म के रूप में प्रकट हुए। युद्ध से घृणा पैदा की गई। अतः दोनों आन्दोलन क्षात्र धर्म के विपक्ष में अहिंसा को परम धर्म मानते थे। इनके अहिंसा के प्रचार के कारण क्षात्र धर्म का ह्रास होना शुरू हुआ। बहुत से क्षत्रिय कुलों ने अपने क्षात्र धर्म को छोड़ कर अन्य काम शुरू कर दिए। उस समय समाज की आंतरिक और बाहरी सुरक्षा क्षत्रियों का ही दायित्व था। परिणाम स्वरूप देश की सुरक्षा के लिए खतरा पैदा हो गया।

अरब में इस्लाम का उदय : कलियुगाब्द ३७०२ तदानुसार ईस्वी की छठी शताब्दी में अरब में इस्लाम का उदय हुआ। उसने सैनिक शक्ति के आधार पर सारे मध्यपूर्व को जो शिव उपासक था, पादाक्रांत कर वहां की सभ्यता, संस्कृति, मान्यताओं और परम्पराओं को समाप्त कर इस्लामिक जीवन में परिवर्तित कर दिया। १०० वर्ष के अंदर ही इस्लाम की विजय वाहिनी स्पेन पहुंच गई और वहां से पूर्व की ओर मुड़ कर फ्रांस, इटली, अल्बेरुनिया, यूनान, तुर्की को रौंदते हुए यह वाहिनी २२५ वर्ष में चीन में प्रवेश कर गई।

तत्कालीन हिन्दू समाज : तत्कालीन हमारा देश हिन्दुस्थान के नाम से ४५०० मील लम्बा और इतना ही चौड़ा दुनिया का सब से बड़ा देश था। केवल क्षेत्रफल की दृष्टि से ही नहीं अपितु धन-धान्य और ज्ञान-विज्ञान की दृष्टि से भी यह देश दुनिया का सिरमौर था। इसकी पश्चिम की सीमा ताशकंद-यारकन्द से पूर्व में इण्डोनेशिया (हिन्दू एशिया) और उत्तर में मानसरोवर से लेकर दक्षिण में हिन्दू सागर तक थी। अरब से इस्लाम के आक्रमण हिन्दुस्थान पर जल मार्ग से शुरू हुए। उन्होंने सिन्ध को विजय कर लिया, परन्तु सुमेर राजपूतों ने कुछ समय के बाद सिन्ध पर अधिकार कर लिया। फिर ताशकन्द-यारकन्द की ओर से आक्रमण आरंभ हुए।

भारत का अंतिम सम्राट महाराजा हर्ष था। उसकी मृत्यु कलियुगाब्द ३७५० (ईस्वी सन् ६४८) में हो गयी। उनके बाद देश को राजनीतिक दृष्टि से जोड़ने वाला कोई राजनीतिक पुरुष नहीं था। परिणामस्वरूप देश ५०० के लगभग छोटे-छोटे हिन्दू राज्यों में बंट गया। इस अवस्था में इस्लाम ने आक्रमण के नाते हिन्दुस्थान में प्रवेश कर हिन्दुस्थान को 'दारूल हर्ब (युद्धक्षेत्र) कह कर हिन्दू समाज के विरूद्ध जिहाद घोषित कर दिया। परिणामस्वरूप १००० वर्षीय हिन्दू-मुस्लिम युद्ध शुरू हो गया।

नये क्षत्रिय वर्ग का निर्माण : समाज की सुरक्षा का दायित्व क्षत्रियों पर था, परंतु उनमें से बहुतों ने अपना दायित्व छोड़कर अन्य काम अपना लिए। क्षत्रियों के ह्रास होने से देश की सुरक्षा के लिए संकट उत्पन्न हो गया। उस समय के साधु-सन्तों ने राष्ट्र चिन्तकों के साथ विचार-विमर्श कर नये क्षत्रिय वर्ग के निर्माण की योजना बनाई। अतः सारे देश का सर्वेक्षण करने से ज्ञात हुआ कि केवल ३६ क्षत्रिय कुल ऐसे हैं जिन्होंने बौद्ध धर्म स्वीकार नहीं किया है। अतः सन्तों ने एक नये क्षत्रिय वर्ग के निर्माण करने के लिए पवित्र आबू पर्वत पर एक राष्ट्रीय चिंतन वर्ग का आयोजन किया और उन ३६ राजकुमारों के प्रतिनिधियों को आबू पर्वत के चिंतन वर्ग में आमन्त्रित किया। उनके अतिरक्ति अन्य राष्ट्र चिन्तकों को भी चिंतन वर्ग में बुलाया गया। वहां परस्पर विचार विमर्श कई दिनों तक चलता रहा। अंत में संतों के वर्ग में आये क्षत्रिय कुलों में ४ कुलों—चौहान, परमार, प्रतिहार, सोलंक नाम के नये क्षत्रिय वर्ग-राजपूत को गठित करने के लिए चुना। आबू पर्वत पर हवन सतत् रूप से चल रहा था। हवन की लपटों को साक्षी मान इन चार कुलों की दीक्षा हवन की अग्नि के समक्ष हुई। इस कारण इन्हें ४ अग्निकुल राजपूत कहा गया। क्षत्रिय नाम बदनाम हो चुका था। अतः उसके स्थान पर राजपूत शब्द प्रचलित किया गया। इन चार अग्निकुलों के क्षात्र वर्ग ने ६०० वर्ष तक इस्लाम को रोके रखा और एक पग भी आगे बढ़ने नहीं दिया। इसी कारण ईस्वी सन् ६०० से सन् १००० तक के कालखण्ड को राजपूत युग कहा जाता है। तत्कालीन समाज के प्रति संतों का यह बहुत बड़ा योगदान ही नहीं उपकार है। जहां इस्लाम की विधर्मी वाहिनी २२५ वर्ष में चीन पहुंच गयी, हिन्दुस्थान में इस राजपूत शक्ति ने

अपने बाहुबल और वीरता से ६००वर्ष तक इसे रोके रखा। संतों का यह अविस्मरणीय योगदान है।

राजपूत युग : इस राजपूत शक्ति का अंतिम सम्राट पृथ्वी राज चौहान था। उसने तत्कालीन देश की रक्षा के लिये जम्मू से लेकर गुजरात तक एक सुरक्षा पंक्ति बनाई थी। इस्लाम की सेनायें आती गयीं और इस सुरक्षा पंक्ति से टकराकर पराजित होती गई। कोई इतिहासकार कहता ऐसा ७ बार हुआ। कोई कहता १७ बार हुआ। परंतु जब तराईन के युद्ध में पृथ्वीराज चौहान, राजपूत शक्ति का अंतिम सम्राट अपने सगे संबंधी जम्मू के राजा की देशद्रोहिता के कारण हार गया तो वह सुरक्षा पंक्ति टूट गयी और १०० वर्षों में इस्लाम की सेनायें दक्षिण में हिन्दू सागर के तट पर पहुंच गयीं और उत्तर पूर्व में इस्लाम की जिहादी सेना ने असम के हिन्दू राज्य की सीमा पर दस्तक दी। यह जिहादी संघर्ष केवल राजनीतिक न होकर धार्मिक और सांस्कृतिक भी था। दिल्ली पर इस्लाम का अधिकार होने के कारण धर्मांतरण प्रारंभ हुआ। इस्लामीकरण सेना और राज्य के संरक्षण में शुरू हुआ। मुसलमान सुल्तानों के अमानवीय अत्याचार, हिन्दू समाज पर शुरू हुए। उदाहरणार्थ अलाऊदीन खिलजी के विदेशी राज्य में हिन्दू घोड़े पर नहीं चढ़ सकता था। हिन्दू सोने चान्दी के बर्तन नहीं रख सकता था। हिन्दुओं के धार्मिक उत्सवों पर प्रतिबंध लगा दिये। विवाह शादियों पर आक्रमण होने लगे। मंदिरों और तीर्थस्थलों को अपवित्र किया जाने लगा। अतः देश पर इस्लाम के अत्याचारों से समाज में निराशा का वायुमण्डल व्याप्त हो गया। संघर्ष चल रहा था परंतु देश को राजनीतिक दृष्टि से जोड़ने वाला कोई राष्ट्र पुरुष नहीं था।

इस सर्वनाश से समाज, उसके धर्म, संस्कृति और सभ्यता की रक्षा के लिए संत पुनः मैदान में आए। सोचने लगे समाज की रक्षा कैसे की जाए। राजनीतिक दृष्टि से मुसलमानों का राज्य दिल्ली में स्थापित हो गया था। छोटे-छोटे हिन्दू राज्य संघर्षरत थे, परंतु सारे समाज को राजनीतिक दृष्टि से जोड़ने वाला कोई नेता नहीं था। इसलिए संतों ने राजनीतिक संघर्ष का रास्ता छोड़ दिया।

उन्होंने तब सामाजिक दृष्टि से विचार किया कि क्या कोई ऐसा सामाजिक महापुरुष है जो समाज को जोड़ सकता है? परंतु निराशा ही हुई। अंत में संतों ने और तत्कालीन राष्ट्र चिंतकों ने विचार-विमर्श किया कि इस प्रकार की संकटपूर्ण अवस्था में समाज को जगाने का परम्परागत केवल एक मार्ग है—धर्म जागरण। इस में स्थायित्व है। अतः धर्म जागरण करने का निर्णय हो गया, परंतु इसका प्रमुख नेता कौन हो? उनका ध्यान शंकराचार्य की ओर गया कि क्या वे धार्मिक आन्दोलन का नेतृत्व कर सकते हैं ? शीघ्र ही उनके ध्यान में आया कि शंकराचार्य तो आपस में एक साथ मिलते नहीं हैं। वह नेतृत्व कैसे करेंगे ? जब तत्कालीन समाज से उनको नेता प्राप्त करने में निराशा हुई तब उनकी दृष्टि भारत के इतिहास की ओर गयी कि क्या इतिहास में ऐसा कोई महापुरुष है जिसको नेता के रूप में सामने लाया जाए ?

धार्मिक आन्दोलन के लिए दो महापुरुषों का चयन : अतः इतिहास में खोज पड़ताल कर संतों ने दो महापुरुषों को नेता के रूप में सामने लाने का निर्णय किया। एक श्री रामचन्द्र और दूसरे श्री कृष्ण। प्रभु रामचन्द्र मर्यादा पुरुषोत्तम थे। श्री कृष्ण अर्जुन को गीता में अपनी विभूतियां बताते हुए कहते हैं– हे अर्जुन! शस्त्र धारियों में मैं राम हूं। एक बार श्री राम चन्द्र अकेले १४००० शत्रुओं से घिर गए। उन्होंने अकेले ही १४००० शत्रुओं को मौत की नीन्द सुला दिया। सन्त समाज ने तय किया कि ऐसे महापुरुष को समाज के सामने लाया जाए। प्रभु रामचन्द्र ने यदि १४००० शत्रुओं को अकेले मार गिराया तो तुम क्या १४ शत्रुओं को पराजित नहीं कर सकते हो? इस प्रकार प्रचार शुरू हुआ।

दूसरे महापुरुष श्री कृष्ण १६ कला संपूर्ण थे। वह विश्व के श्रेष्ठ पहलवान थे और तत्कालीन समाज के विलक्षण नेता थे। जब कुरुक्षेत्र में पांडवों और कौरवों की सेनायें युद्ध के लिये आमने-सामने खड़ी हो गयीं तो श्री कृष्ण ने युधिष्ठिर को कहा–इस युद्ध में सर्वनाश होने वाला है। अतः मैं फिर एक बार दुर्योधन के पास जाना चाहता हूं ताकि युद्ध को टाला जा सके और इतिहास में यह न लिखा जाये कि युद्ध को रोकने के लिये अंतिम प्रयास नहीं हुआ।

युधिष्ठिर ने कहा श्री कृष्ण! दुर्योधन महापापी है। वह आपको कैद कर लेगा। फिर हमारा क्या होगा ? अर्जुन और बाकी सभी ने भी जाने से मना किया। तब श्री कृष्ण ने कहा–"मैं तुम सभी को आश्वासन देता हूं कि यदि दुर्योधन आदि मुझे पकड़ने का प्रयत्न करेंगे तो तुम को लड़ना नहीं पड़ेगा। मैं अकेला ही उनकी सारी सेना को समाप्त कर दूंगा।" यह कह कर श्रीकृष्ण मिलने गये। दुर्योधन नहीं माना और श्रीकृष्ण को निवेदन किया कि महाराज रात को यहीं विश्राम करें, परंतु श्री कृष्ण ने कहा–"नहीं मैं गंगा के पार विदुर की कुटिया में जा रहा हूँ।"

ऐसे अद्भुत गुणों से युक्त महापुरुषों के चरितों को समाज के सामने लाया गया। उनकी भक्ति से धर्म जागरण शुरू हुआ। भक्ति से शक्ति उत्पन्न करने की योजना बनी। परिणाम स्वरूप इस भक्ति आन्दोलन से एक महान हिन्दू जागरण हुआ। हर प्रांत में भक्ति आन्दोलन के आचार्य प्रकट हुए। समाज की निराशा और हताशा इत्यादि सब समाप्त हुई।

इस्लाम के साथ संघर्ष दिन और रात चल रहा था, परंतु १६वीं शताब्दी तक हिन्दू हर मोर्चे पर हार रहा था और मुसलमान हर मोर्चे पर जीत रहा था। १७वीं शताब्दी में भारत के इतिहास में एक चमत्कार हुआ कि हिन्दू हर मोर्चे पर जीत रहा है और मुसलमान हर मोर्चे पर हार रहा है। इस चमत्कार का कारण था भक्ति आन्दोलन के द्वारा उत्पन्न महान हिन्दू जागरण। उदाहरणार्थ पंजाब में गुरु की भक्ति और तपस्या के आधार पर महाराजा रणजीत सिंह के राज्य की स्थापना हुई और उनके सेनापति हरि सिंह नलवा ने मुगल शासन को समाप्त कर काबुल में भगवा लहराया।

उधर दक्षिण में महाराष्ट्र में भक्ति आन्दोलन के संतों की २००० वर्षों की तपस्या के कारण शिवाजी महाराज का प्रकटीकरण हुआ। उसने मुगलों के साम्राज्य के विरूद्ध २५५ युद्ध किए और यह

उनका युद्ध कला का कीर्तिमान है कि वह न तो हारे और न ही जख्मी हुए। उसने महापापी औरंगजेब की छाती के ऊपर पांव रख कर महाराष्ट्र में ३६० मील लम्बा और १५० मील चौड़ा हिन्दू साम्राज्य स्थापित किया। शिवाजी की मृत्यु के १०० वर्ष पश्चात् शिवाजी ने जिस हिन्दू साम्राज्य की स्थापना की थी उसकी सेनाएं काबुल तक पहुंच गयीं और उन्होंने वहां भगवा लहराया। मुगल बादशाह उस हिन्दू शक्ति, जिसको मराठा शक्ति का साम्राज्य कहा जाता है, उसकी शरण में आ गया और भारत की खोई हुई प्रभुसत्ता फिर से हिन्दुओं के हाथ में आ गयी। भक्ति आन्दोलन से उत्पन्न हुई महान हिन्दू शक्ति ने इस्लाम को उखाड़ फैंका।

उधर पूर्व में विशेषतः असम पर मुगलों ने १७ बार आक्रमण किये, परंतु प्रत्येक बार या तो उनका सेनापति मारा गया या पराजित होकर भाग गया। इस प्रकार असम के हिन्दू राज्य के वीरों ने इस्लाम नहीं फैलने दिया और सारे विश्व में इस्लामीकरण की योजना को पूर्णतः पराजित करने में सफल हुए। वैश्विक इस्लामीकरण की पश्चिमोत्तर वाहिनी २२५ वर्ष में चीन पहुंच गयी थी। दूसरी वाहिनी पश्चिम से हिन्दुस्थान के मार्ग से प्रशांत महासागर में चीन की विजयी मुस्लिम वाहिनी को मिलने वाली थी, परन्तु हिन्दुस्थान का इस्लामीकरण नहीं हो सका और भक्ति आन्दोलन से उत्पन्न हुई महान हिन्दू शक्ति के वीरों ने इस्लाम की वैश्विक इस्लामीकरण की योजना को धराशाई कर दिया। इतिहासकारों ने इसका ठीक से प्रतिपादन नहीं किया है, परंतु इस्लाम ने इस ऐतिहासिक तथ्य को स्वीकार किया है। भक्ति आन्दोलन के आचार्यों, साधु-संतों का समाज के प्रति यह एक महान योगदान है। इन्हीं संतों के उपदेशों, प्रवचनों, कीर्तनों, भजनों, धार्मिक सम्मेलनों से सारा हिन्दू समाज एक राष्ट्र के नाते खड़ा हुआ और इस्लाम के मुगल साम्राज्य को उखाड़ फैंका। इसका प्रमाण मुस्लिम कवि हामी की कविता की ये पंक्तियां हैं –

वह दीने हिजाज़ी का बेबाक बेड़ा
निशान जिसका अक्साए आलम में पहुंचा
मुकाबिल हुआ कोई खतरा न जिसका
न अम्मान में अटका न सुरजहान में ठिठका
किया पे जिसने पार सातों समुन्दर
वह डूबा गंगा के दहाने में आकर।

संतों की उत्पत्ति : संतों की उत्पत्ति का इतिहास बहुत पुराना है। भारतीय इतिहास के आदि युग में आज से १,६७,३६,४६,१११ वर्ष पूर्व चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को इस पृथ्वी पर प्रथम मानव ब्रह्माजी के रूप में प्रकट हुआ। ब्रह्माजी ने सृष्टि रचना का श्री गणेश करने के लिए ईश्वर की प्रेरणा से अपने संकल्प से ४ मानस पुत्र उत्पन्न किये। इनके नाम हैं–सनक, सनन्दन, सनत कुमार, सनातन। उनको ब्रह्माजी ने प्रजापति के नाते कार्य करने के लिए कहा, परंतु उन्होंने ब्रह्माजी को निवेदन किया कि वे गृहस्थ आश्रम के चक्र में पड़ना नहीं चाहते। वे आजीवन ब्रह्मचारी रहकर वेदों का प्रचार और मानवों की सेवा

करेंगे। ब्रह्माजी चिन्तित हो गए कि श्री गणेश ही गलत हुआ, परंतु उन्होंने परमात्मा की प्रेरणा से अपने सात और मानसपुत्र पैदा किये। उन्हीं से आगे मानव सृष्टि का विस्तार हुआ।

सनक, सनन्दन, सनत कुमार और सनातन मानव कुल के प्रथम ऐतिहासिक पुरुष हैं। उन्होंने सारा जीवन ब्रह्मचारी रह कर अपने समाज और मानवता की निस्वार्थ और निष्काम सेवा करने का आदर्श समाज के सामने रखा। इन्हीं की परम्परा में आगे चल कर साधु, सन्यासी, महंत, संत और साधु हुए। उन्होंने इन्हीं ४ प्रथम ऐतिहासिक पुरुषों द्वारा स्थापित समाज सेवा का व्रत धारण किया। अतः साधु, संत, सन्यासी, महंत, प्रचारक इत्यादि सभी शब्द समानार्थक हैं। यह सभी अपने समाज और मानवता के प्रति पूर्णतः समर्पित हैं। वास्तव में यह साधु संत समाज की प्राण वायु हैं। यथा— हम सारा दिनभर काम करते हैं और रात को सो जाते हैं। शरीर शीतल हो जाता है। बुद्धि अचेत हो जाती है। फिर हम प्रातः कैसे उठ पड़ते हैं? हम रात को सो जाते हैं, परंतु हमारे शरीर में एक यंत्र है। वह कदापि सोता नहीं है। उसका नाम है 'हृदय'। यदि वह किसी कारण सो जाए तो प्रातः राम नाम सत हो जायेगा। अतः प्रत्येक समाज में हृदय की भान्ति कार्य करने वाले लोगों का समूह होता है जो सदैव जागृत रहता है। समाज की यह संजीवनी शक्ति है। अतः सारे साधु संत प्रचारक यह हमारे समाज के प्राण वायु है। संत या सन्यासी या साधु वह होता है जो समाज के प्रति पूर्णतः समर्पित होता है और वे चौबीसों घण्टे काम करना अपना कर्त्तव्य समझते हैं। हमारे समाज में यह साधु अथवा सन्यासी सतत रूप से देश का प्रवास करते हैं और अपने शिष्यों की समस्याओं का समाधान करते हैं। ऐसे अनेक संतों ने अपने देश के पुण्य स्थानों पर आश्रम बनाये हैं। उन आश्रमों के संतों के शिष्य भगवान का भजन करते हैं। अपने गुरुओं के उपदेश सुनते हैं। गुरु पूर्णिमा के दिन अपने देश के पवित्र तीर्थों यथा हरिद्वार, मथुरा, वृन्दावन, काशी, प्रयाग, गया, जगन्नाथपुरी आदि में हजारों की संख्या में लोग एकत्रित होकर अपने गुरुओं के प्रति श्रद्धा व्यक्त करते हैं। इन्हीं साधु संतों और सन्यासियों के कारण हमारा अग्रजन्मा हिन्दू समाज आज भी ८५ करोड़ की जनसंख्या में विद्यमान है।

भारत विभाजन का ऐतिहासिक मूल कारण

ईस्वी सन् की ८वीं शताब्दी में इस्लाम ने आक्रमक के नाते हिन्दुस्थान में प्रवेश किया और सारे देश का इस्लामीकरण करने के लिए हिन्दू समाज के विरुद्ध जिहाद की घोषणा कर दी। उस समय हिन्दुस्थान में राजनीतिक दृष्टि से कोई सम्राट हिन्दू समाज को एकजुट रखने वाला नहीं था। देश उस समय छोटे-छोटे ५०० हिन्दू राज्यों में बंटा हुआ था। परिणामतः २००० वर्षीय हिन्द – मुस्लिम महायुद्ध शुरू हुआ। यह संघर्ष हिन्दुस्थान की पश्चिमी सीमा हिन्दुकुश-ताशकन्द और यारकन्द से आरम्भ हुआ। हर ग्राम, हर नगर में दिन-रात लड़ाई चल रही है। हिन्दू हर मोर्चे पर हार रहा है और मुसलमान हर मोर्चे पर जीत रहा है।

उपरोक्त स्थिति १३वीं शताब्दी तक चलती रही, परन्तु १७वीं शताब्दी में हिन्दुस्थान के इतिहास में एक चमत्कारिक पविर्तन हुआ – हिन्दु हर मोर्चे पर जीत रहा है और मुसलमान हर मोर्चे पर हार रहा है। इस का कारण था कि १८वीं शताब्दी से लेकर १६वीं शताब्दी तक भक्ति आन्दोलन के द्वारा एक महान हिन्दू शक्ति का जागरण सारे देश में हुआ।

दक्षिण भारत में शिवाजी महाराज ने विदेशी मुगलों के विरुद्ध २५५ युद्ध लड़कर उनकी छाती का ऊपर पांव रखकर २५० मील लम्बे और १५० मील चौड़े हिन्दू साम्राज्य का निर्माण किया। सन् १६७५ में शिवाजी का राज्याभिषेक हुआ। उसमें हिन्दू साम्राज्य के श्रीगणेश की घोषणा की गयी। शिवाजी की पूर्व की यह भी घोषणा थी कि हिन्दुस्थान की सीमा उत्तर में मानसरोवर से दक्षिण मे कन्याकुमारी तक है। मैं इसे स्वतंत्र करके रहूंगा।

शिवाजी की मृत्यु के १०० वर्ष बाद हिन्दू साम्राज्य की सेनाओं ने काबुल में भगवा लहराया। दिल्ली का मुगल बादशाह हिन्दू शक्ति (मराठा) की शरण में आ गया और देश की खोई हुई प्रभुसत्ता हिन्दुओं के हाथ में आ गयी।

पंजाब में महाराजा रणजीत सिंह के राज्य की स्थापना हो गयी थी। उसके विश्व विख्यात सेनापति हरिसिंह नलवा ने अतुलनीय पराक्रम से गत् कुछ शताब्दी से मुस्लिम अत्याचारों की जो नदी पश्चिम की ओर पूर्व की ओर बह रही थी उस की दिशा पश्चिम की ओर बदल डाली।

भक्ति आन्दोलन की इस महान शक्ति के कारण हिन्दू वीरों ने मुगल साम्राज्य को जड़ से उखाड़ फेंका। परंतु इसी समय अंग्रेज जो व्यापारी के रूप में हिन्दूस्थान आये थे, वे एक राजनीतिक शक्ति के रूप में उभरे।

अतः मुस्लिम और अंग्रेज इन दोनों शत्रुओं से संघर्ष चला। एक शत्रु अर्थात् इस्लाम को तो धराशायी कर दिया और देश में हिन्दुओं का बोल बाला हो गया। परंतु अंग्रेजों के आंशिक रूप में स्थापित विदेशी राज्य को ध्वस्त कर उनको देश से भगाने के लिये संघर्ष आरंभ हो गया। उनसे लगातार चार युद्ध (मराठा युद्ध) हुये परंतु चारों युद्धों में पराजित होना पड़ा और अंग्रेजों के राज्य की स्थापना हिन्दुस्थान में हो गयी। देश की प्रभुसत्ता उनके हाथ में चली गयी।

सन् १८५७ का स्वातत्र्य संग्राम

सन् १८५७ में नाना पेशवा के नेतृत्व में अंग्रेजों को उखाड़ फेंकने के लिए अंतिम संग्राम हुआ। इस युद्ध में उनके गुरु स्वामी दयानन्द थे। इस महान स्वतंत्रता संग्राम में अंग्रेज हार चके थे और उनका अंग्रेज वाइसराय इंग्लैण्ड को भागने की तैयारी कर रहा था, परंतु घर का भेदी लंका ढाये अपने देश के कुछ राजाओं ने निजी स्वार्थ के लिये अंग्रेजों का साथ दिया और हारा हुआ अंग्रेज जीत गया और पुनः हिन्दुस्थान की सत्ता का स्वामी बन गया।

सन् १८५७ के संग्राम के बाद देश की स्थिति में बहुत बड़ा परिवर्तन हुआ। हिन्दुस्थान में अंग्रेज कम्पनी सरकार का राज्य सीधा ब्रिटेन की सरकार के अधीन हो गया। भक्ति आन्दोलन के द्वारा उत्पन्न हुई महान हिन्दू शक्ति का समारोप हो गया। परंतु फिर भी हमारे वीर और महान देश भक्तों ने हाथ खड़े कर पराजय को स्वीकार नहीं किया। वे थके नहीं, झुके नहीं, डटे रहे, और देश को पुनः स्वतन्त्र करने के लिए नये युग की नई प्रेरणा से हिन्दू सांस्कृतिक पुनरुस्थान (Hindu Renacence) का आन्दोलन शुरू हुआ।

''त्रिसूत्री योजना'' हिन्दू, हिन्दुस्थान और हिन्दु राष्ट्र

सन् १८५७ के संग्राम तक हिन्दू शब्द का सम्मान सारी दुनिया भर में था और हमारी पहचान हिन्दू थी। विदेशी मुस्लिम आक्रान्तों के विपक्ष में १००० वर्षीय महायुद्ध हिन्दु के नाम से लड़कर उनके विदेशी मुस्लिम मुगल साम्राज्य को जड़ से उखाड़ फैंका। अंग्रेजों ने हमारी इस राष्ट्रीय पहचान को समाप्त करने के लिए सन् १८५७ के बाद एक त्रिसूत्री योजना बनाई। इसका पहला सूत्र था – De- Hindulisation of The Hindus अर्थात् हिन्दुओं का अहिन्दूकरण करना। उनको साम्प्रदायिक बनाना।

दूसरा सूत्र था De-nationalisation of The Hindu अर्थात् हिन्दुओं का अराष्ट्रीयकरण करना। तीसरा और अन्तिम सूत्र था De- socialisation of The Hindu अर्थात् हिन्दू समाज को विघटित करना।

मध्य एशियायी सिद्धान्त का आविष्कार

उपरोक्त ''त्रिसूत्री'' योजना को कार्यान्वित करने के लिए अंग्रेजी विदेशी सरकार ने आर्यों के मूल अभिजन के लिए मध्य एशियायी सिद्धान्त का आविष्कार कर भारत के इतिहास को विकृत

करने का षड्यन्त्र रचा। १८ अप्रैल सन् १८६५ को लन्दन में Royal Asiatic Society लन्दन की बैठक आयोजित की गयी। बैठक Royal Asiatic Society के अध्यक्ष Stongsfield की अध्यक्षता में की गयी। बैठक का विषय था **आर्यों का आदि देश (मूल अभिजन)।** इस बैठक का आयोजन अंग्रेजी सरकार के मार्गदेर्शन में हुआ था। इसमें न तो यूरोप का कोई प्रतिनिधि था और न ही भारत का। Thomson नाम के अंग्रेज ने आर्यों के मूल अभिजन का विषय सब के सम्मुख प्रस्तुत किया। इस पर परस्पर चर्चा हुई और परिणाम स्वरूप सर्वसम्मति से यह निर्णय किया गया कि आर्यों का आदि देश मध्य एशिया था और कालक्रम में वे वहां से अन्य देशों में गये।

मध्य एशिया को आर्यों का मूल अभिजन मानकर यह भी कहा कि आर्य खेती-बाड़ी करते थे और भेड़ बकरियां चराते थे। कालक्रम में जलवायु में परिवर्तन हुआ और वर्षा कम होने लगी। इससे खेती करने में असुविधा हो गयी और आर्यों ने मध्य एशिया को छोड़ने का निर्णय कर लिया। उनकी एक शाखा यूरोप चली गयी। उन्होंने वहां के आदिवासियों को पराजित कर अपना राज्य स्थापित कर लिया। दूसरी शाखा ईरान और लघु एशिया में पहुंची। उसने भी वहां वही किया जो यूरोप में गयी शाखा ने किया। तीसरी शाखा के आर्यों ने पामीर के पर्वत को पार कर हिन्दुस्थान के पंजाब प्रान्त पर आक्रमण कर दिया। वहां के मूल निवासी द्रविड़ थे। वे आर्यों का मुकाबला नहीं कर सके। बहुत से मारे गये। कुछ तो आर्यों ने अपना दास बना लिया और बाकी दक्षिण की ओर भाग गये। आर्यों ने पंजाब पर अधिकार कर लिया और भारत का आर्यकरण पश्चिम से पूर्व की ओर करना शुरू किया। यहां के मूल निवासी कोल, भील, और द्रविड़ थे। आर्यों के आक्रमण के सामने वे टिक न सके। उनमें भी बहुत से मारे गये और कुछ को आर्यों ने अपना दास बना लिया और बाकी जंगलों की ओर भाग गये। इस प्रकार आक्रामक आर्यों ने भारत को अपने राज्य की स्थापना आज से ३५०० वर्ष पूर्व कर ली।

अंग्रेज सरकार ने मध्य ऐशियायी सिद्धान्त को मान्यता दे दी और आर्यों के विषय कर समावेश Oxford History of india और cambridge history of india में कर लिया।

भारत की अंग्रेज सरकार ने कानून पास कर आर्यों का विषय शिक्षा के पाठ्यक्रम में शामिल कर दिया। मध्य एशियायी सिद्धान्त का प्रचार करने के लिये अंग्रेजी सरकार ने लाहौर में Oriental College शुरू किया और बनारस में क्वीनस कालेज। परिणाम स्वरूप भारत की शिक्षा संस्थाओं में गत १५० वर्षों से यह पढ़ाया जा रहा है कि आर्य मध्य एशिया के रहने वाले थे। हिन्दुस्थान उनका मूल देश नहीं है।

भारत के इतिहास और साहित्य में कहीं भी आर्यों के बाहर से हिन्दुस्थान में आने का संकेत भी नहीं है। आर्य शब्द जाति वाचक नहीं है। आर्य का अर्थ है सभ्य सुसंस्कारित, चरित्रवान और

मानवीय गुणों से युक्त पुरुष। मनुस्मृति के अनुसार आर्यों की १० शाखाएं हैं– पांच द्राविड़ और पांच गौड़। केवल तमिलनाडू ही द्राविड़ नहीं है अपितु केरल, आन्ध्र, महाराष्ट्र, सिन्ध और मध्यप्रदेश भी द्राविड़ है। बाकी बचे भारत में पांच गौड़ है। यह विभाजन जाति वाचक नहीं अपितु भौगोलिक है। मध्य एशियायी सिद्धान्त की कल्पना यूरोप की मानसिकता में १८वीं शताब्दी में उपजी जो पर्णतः असत्य है। इस मिथ्या सिद्धान्त का जो समय बताया गया है उस काल में मध्य एशिया भारत का प्रांत था। आर्यों के मूल अभिजन के लिए मध्य एशियायी सिद्धान्त के आविष्कार के आधार पर जो इतिहास का विकृतिकरण कर अंग्रेजों ने भारत के इतिहास के साथ एक बहुत बड़ा अन्याय किया है।

इतिहास के उपरोक्त विकृतिकरण के कारण देश में विघटनकारी वृत्तियां आरंभ हो गयी–यथा आय-द्रविड़ समस्या, दक्षिणवासी-उत्तरवासी, ब्राह्मण-अब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, छूत-अछूत। इसके कारण वर्णों के आधार पर ब्राह्मण महासभा, क्षत्रिय महासभा का प्रोत्साहन प्रदान किया।

त्रिभगिनी सम्प्रदाय के सिद्धान्त का अविष्कार (Three Sister Communities)

विदेशी अंग्रेजी सरकार उपरोक्त विकृतिकरण तक ही नहीं रुकी, उसने हमारी सनातन, पुरातन राष्ट्रीयता जिसका श्रीगणेश विश्व के सब से पुराने ग्रन्थ ऋग्वेद से होता है उसको नष्ट करने के लिए *''त्रिभागनी संप्रदाय''* के मिथ्या सिद्धान्त का आविष्कार किया। इतिहास को विकृत कर अंग्रेजी सरकार ने यह प्रतिपादित किया कि भारत हिन्दुओं का मूल देश ही नहीं है। इनके पूर्वज आर्य ३५०० वर्ष पर्व मध्य एशिया से आक्रामक के नाते भारत में आए, उसके बाद मुसलमान आए। अतः वह भी विदेशी है और हिन्दुस्थान उनका भी देश नहीं है। उनके बाद ईसाई आए। कालक्रम में यह तीनों सम्प्रदाय इस देश में बस गये। हम जब इस देश में आये जो यहां न तो कोई सभ्यता थी, न ही संस्कृति और न ही राष्ट्रीयता।

हमने इस देश को राजनीतिक एकता प्रदान की। अब इस देश के मालिक हिन्दू, मुस्लिम और ईसाई यह तीन सम्प्रदाय है। ये आपस में मिलकर नये राष्ट्र का निर्माण करें और जब तक मिलकर नये राष्ट्र का निर्माण कर लेंगे तब हम भारत छोड़ कर चले जाऐंगे। त्रिभागिनी सम्प्रदाय के सिद्धान्त को कार्यान्वित करने के लिए लार्ड ह्यूम (Hume) ने सन् १८८५ में Indian national Congress की स्थापना की। संस्था का नाम विदेशी, संस्थापक विदेशी और उद्देश्य साम्राज्यवादी। इस का नारा था– हिन्दू, मुस्लिम और ईसाई सब हैं आपस में भाई-भाई।

लाल (लाला लाजपतराय), पाल (विपिन चन्द्र पाल), बाल (बाल गंगाधर तिलक) और अन्य राष्ट्रवादियों ने त्रिभागिनी सम्प्रदाय के सिद्धान्त को अस्वीकार कर दिया और घोषणा की कि मुसलमान और ईसाई हमारे साथ आये या न आये हम अकेले ही देश को स्वतन्त्र कर लेंगे। अंग्रेजों ने उनका साथ नहीं दिया। उन्होंने उनका साथ दिया जो उनके आविष्कृत त्रिभागिनी सम्प्रदाय के

सिद्धान्त को मानने वाले थे। बाल गंगाधर तिलक जी की मृत्यु २० वीं शताब्दी के दूसरे दशक में हो गयी। उसी दशक में लाला लाजपतराय चले गये और अरविंद घोष पांडिचेरी चले गये। अतः इस प्रकार कांग्रेस में हिन्दू राष्ट्रवादियों का युग समाप्त हो गया।

कांग्रेस की बागडोर त्रिभागिनी साम्प्रदाय के सिद्धान्त को मानने वाले नेताओं के हाथ में आ गयी। इनके नेता महात्मा गांधी और पंडित जवाहर लाल नेहरू मुख्य थे। इनके मार्गदर्शन में कांग्रेस ने यह स्वीकार कर लिया कि यह देश केवल हिन्दुओं का ही नहीं अपितु मुसलमानों और ईसायियों का भी है।

अतः तीनों सम्प्रदायों को मिलाकर एक नये राष्ट्र का निर्माण का अभियान महात्मा गांधी के नेतृत्व में शुरू हुआ। गांधीजी ने अपना केन्द्र वर्धा में बनाया। वे प्रत्येक दिन सांय को प्रार्थना करते थे। उनकी इस प्रार्थना सभा में कांग्रेस के अन्य बड़े-बड़े नेता भी आते थे। प्रार्थना का घोष वाक्य था– ईश्वर अल्लाह तेरे नाम सब का सम्मति दे भगवान। महात्मा जी रोज चरखा भी चलाते थे। चरखा कातते समय यह गीत भी गाया जाता था – *चरखा मोरा करजा धूं धूं – यह तो याद करामा अल्लाह है मौला तू तू।*

वर्धा शिक्षा योजना

महात्माजी ने वर्धा.ािक्षा योजना तैयार की और इसके लिये जो प्रथम पुस्तक तैयार की गयी उस में लिखा था *''मौलवी वशिष्ठ , शाहजादा राम और बेगम सीता।*

मुस्लिम लीग के साथ सन् १६१६ में लखनऊ सन्धि हुई। उसमें महात्मा गांधी के मार्गदर्शन में मुस्लिम लीग की सात शर्तें मान ली गयी। बाद में सात की १४ हो गई, उसके बाद २७ हो गयी और अंत में मुसलमानों के लिए पाकिस्तान की मांग मुस्लिम लीग का ध्येय बन गया। महात्मा गांधी ने तीनों सम्प्रदायों को मिलाने और नये राष्ट्र के निर्माण में अपनी सारी शक्तियां लगाकर काम किया, परंतु नये राष्ट्र के निर्माण नहीं हुआ अपितु सन् १६४७ में देश का विभाजन हो गया। *त्रिभागिनी सम्प्रदाय के सिद्धान्त* के अनुसार नया राष्ट्र निर्माणधीन है और गांधी जी भारतीय राष्ट्र के पिता नहीं अपितु इस निर्माणधीन राष्ट्र के पिता है।

कांग्रेस ने सन् १६३५ के चुनाव में अपने घोषणा पत्र में यह आश्वासन दिया था कि वह देश को अखण्ड रखेंगे।

परंतु आगे का इतिहास यह बताता है कि जब महात्मा गांधी का जिन्ना के साथ पाकिस्तान के बारे में वार्तालाप हो रहा था तो उस समय अकाली दल के तत्कालीन नेता मास्टर तारासिंह को यह शक हुआ कि कांग्रेस पाकिस्तान की माग को मान लेगी। वह महात्मा गांधी को मिलने गये और गांधी जी को कहा कि हम अखण्ड हिन्दुस्थान में रहना चाहते हैं परन्तु यदि आपने पाकिस्तान की मांग को स्वीकार कर लिया तो हमें खालिस्तान चाहिये। गांधीजी ने कहा कि पाकिस्तान नहीं बनेगा तो हमारे

शवों पर ही बनेगा। गांधी जी को मिलने के बाद मास्टर तारा सिंह पंडित जवाहर लाल नेहरू को मिलने गये और उन्होंने कहा के ऐसे संकेत मिल रहे हैं कि कांग्रेस पाकिस्तान की मांग को स्वीकार करने वाली है। इस पर जवाहर लाल नेहरू ने कहा कि पाकिस्तान यह मूर्खों की कल्पना है। यह कभी नहीं बन सकता।

देश को अखण्ड और अविभाज्य रखने के लिए कांग्रेस ने जो आश्वासन दिये थे उनके बावजूद देश का विभाजन हो गया। इसका वास्तविक और मूल कारण खोजने की आवश्यकता है। पूर्व विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि कांग्रेस ने अग्रेजों द्वारा आविष्कृत त्रिभागिनी सम्प्रदाय के सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया।

विदेशी इस्लाम यहां आया देश का इस्लामीकरण करने के लिए और ईसायत आई ईसाईकरण करने के लिए। यह दोनों ही विचारधाराएं विदेशी है। ये इस देश के स्वामी कैसे हो सकते हैं? कांग्रेस अंग्रेजों के षड्यंत्र के मायाजाल में फंस गयी और उसके नेताओं ने अपनी भारतीय राष्ट्रीयता को भुलाकर यह स्वीकार कर लिया के यहां पर पहले कोई राष्ट्रीयता नहीं थी और अब हम सबको मिलाकर एक नये राष्ट्र का निर्माण करना है। यह कांग्रेस की सब से बड़ी भूल थी।

मित्र राष्ट्र द्वितीय विश्व युद्ध जीत तो गये, परन्तु उनके अपने देश की हालत अत्यत दुर्बल हो गयी। नेता जी सुभाष चन्द्र बोस और उनकी आज़ाद हिन्द सेना के कारण अंग्रेजों की भारत की सेना, वायुसेना, जल सेना और पुलिस जिनके द्वारा वे अपने हिन्दुस्थान के साम्राज्य का संचालन करते थे, वे उनके खिलाफ हो गये। अतः अंग्रेजों ने भारत छोड़ने का निश्चय कर लिया, परंतु उनका पूर्व का निर्णय था कि जब कभी उन्हें भारत छोड़ना पड़ेगा जो वह इसे विभाजित करके जायेंगे। द्वितीय विश्वयुद्ध में कांग्रेस ने अंग्रेजों का साथ नहीं दिया, पंरतु मुस्लिम लीग ने उनकी उस युद्ध में सहायता की थी। अतः अंग्रेज सरकार मुस्लिम लीग के पक्ष में थी।

मुस्लिम लीग का पाकिस्तान प्राप्त करने के लिए सीधी कार्रवाई

सन् १९४६ में मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान प्राप्त करने के लिये सीधी कार्यवाही (Direct action) शुरू की। इसके परिणातस्वरूप सारे देश में हिन्दुओं पर आक्रमण शुरू हो गए। कांग्रेस जो तीनों सम्प्रदायों को मिला रही थी वह घबरा गयी। उस समय देश में तीन पक्ष थे – अंग्रेज सरकार, कांग्रेस और मुस्लिम लीग। माऊंटवेटन वायसराय थे। इन तीनों पक्षों में देश के सम्बन्ध मे बातचीत शुरू हुई। मुस्लिम लीग पाकिस्तान प्राप्त करने पर अडिग थी। कांग्रेस ने त्रिभागिनी सिद्धान्त पहले ही स्वीकार कर लिया था। अतः कांगेस के नेतृत्व ने आपस में विचार विमर्श कर यह निर्णय लिया कि मुसलमानों को इनका देश का हिस्सा दे दिया जाए अर्थात् कांग्रेस ने मुस्लिम लीग की पाकिस्तान की मांग स्वीकार कर ली। ईसाई सम्प्रदाय का काम और प्रभाव इतना नहीं था कि वह ईसाईस्तान की मांग कर सकें।

जब कांग्रेस और मुस्लिम लीग में पाकिस्तान बनाने की सहमति हो गई तब इग्लैण्ड की पार्लियामेंट में भारत के विभाजन का दस्तावेज पारित हुआ। उसके अनुसार भारत को दो भागों में बांटा गया – (१) Dominion of Pakistan (मुसलमानों के लिए) (२) और Dominion of Hindustan (हिन्दुओं के लिए)।

पाकिस्तान की मुस्लिमलीग की मांग को पहले जवाहर लाल नेहरू ने स्वीकार किया और बाद में सरदार पटेल ने। पंरतु इसकी स्वीकृति कांग्रेस की कार्यकारी समिति के द्वारा होना आवश्यक था। उसकी बैठक आयोजित हुई और विभाजन का विषय स्वीकृति के लिए उसके सम्मुख रखा गया । कार्यसमिति ने उसे अस्वीकार कर दिया। कांग्रेस के नेतृत्व के लिए संकट पैदा हो गया। नेहरु और सरदार पटेल सहायता के लिए महात्मा गांधी की शरण में गये। गांधी जी कार्यसमिति की बैठक में गए और उन्होंने कहा कि तुम्हारे नेताओं ने देश का बंटवारा स्वीकार कर लिया है। मैं इस के खिलाफ हूँ, परन्तु मैं बूढ़ा हो गया हूँ और देश को अखंड रखने के लिये कोई नया आन्दोलन करने में असमर्थ हूँ। अतः मेरा निवेदन है कि आप अपने नेताओं का निर्णय मान लें। सब चुप हो गये और देश का विभाजन का प्रस्ताव पास हो गया।

जसवंत सिंह ने अपनी हाल ही में प्रकाशित पुस्तक में जो यह लिखा है – Thet Nehru was the Draftsman of the Partition. (नेहरू विभाजन के मानचित्रकार अथवा प्रारूपकार थे), यह शतप्रतिशत सत्य है। विभाजन के दस्तावेज पर लन्दन में सब से पहले हस्ताक्षर जवाहर लाल नेहरू ने किए थे और बाद में जिन्ना ने। इससे स्पष्ट होता है कि देश के विभाजन के लिये कांग्रेस ही पूर्णतः दोषी है। जहां तक महात्मा गांधी का सम्बन्ध है वह भी विभाजन के लिये दोषी है। यदि वे कांग्रेस की कार्यसमिति का साथ देते तो विभाजन रुक सकता था, परंतु उनके नेतृत्व में कांग्रेस ने यह स्वीकार कर लिया था कि यह देश ईसाइयों, मुसलमानों और हिन्दुओं इन तीनों सम्प्रदायों का है। अतः इससे बिना सन्देह के स्पष्ट हो जाता है कि भारत विभाजन का मूल ऐतिहासिक कारण *त्रिभागिनी सम्प्रदाय का मिथ्या सिद्धान्त है।* इतिहासकारों ने इसका प्रतिपादन नहीं किया है।

हिमालय क्षेत्र-आंतरिक एकता के सूत्र

हिमालय विश्व में अपने सर्वाधिक विशाल और उच्चतम शिखरों की भव्यता, दिव्यता और सुन्दरता से युक्त अपने सजीव और वर्धमान अस्तित्व के साथ गौरव से जम्बूद्वीप के मध्य विराजमान है। यह भारतीय जीवन की संरचना में अपृथक्-करणीय भाव से जुड़ा है। यह आज भी हमारे देश भारत के कवियों, लेखकों, गायकों, नर्तकों, शिल्पियों और रंगचित्रकों को उत्साहित और प्रेरित करता है। महाकवि कालीदास ने इसे नागाधिराज अर्थात् पर्वतों का राजा कहा है। इसके अतिरिक्त इसे प्रकृति का मंदिर, देवताओं का सिंहासन, सत्य के अन्वेषकों का आश्रयस्थल आदि विशेषणों से संबोधित किया जाता है।

हिमालय का उल्लेख विश्व के प्रथम ग्रंथ ऋग्वेद के हिरण्यगर्भ सूक्त में आता है। इसमें कहा गया है—ज्योतिर्मय अंड से जिस सृष्टिकर्त्ता ब्रह्माजी का उदय हुआ वही हिमवंत पर्वत का भी स्वामी है। अथर्ववेद के पृथ्वीसूक्त में भी हिमालय की प्रशंसा की गयी है।

आधुनिक पाश्चात्य भूगर्भ शास्त्र के अनुसार हिमालय का जन्म 'तेथाइस' सागर के तल से आज से पाँच करोड़ वर्ष पूर्व हुआ था। भू-गर्भ शास्त्रियों का यह भी कहना है कि हिमालय आयु में विश्व के पर्वतों में छोटा, परन्तु सर्वाधिक उच्चतम, सजीव और सतत् वर्धमान है। वायु पुराण के अनुसार हिमालय का जन्म आज से १३ करोड़ वर्ष पूर्व हुआ था। भारतीय वैज्ञानिक कालगणना के अनुसार यह घटना चाक्षुष मन्वन्तर से २६,८६,८१,३०१ वें वर्ष में हुई थी अर्थात् चाक्षुष मन्वन्तर के ७७,३८,६६६ वर्ष शेष रहने पर।

गत हजार बारह सौ वर्षों की राजनीतिक उथल-पुथल के कारण हिमालय के क्षेत्र के बारे में भ्रामक धारणायें उत्पन्न हो गयी हैं, भूगोल के कुछ आधुनिक विद्वान इसका क्षेत्र असम से कश्मीर तक मानते हैं। यह वर्तमान हिन्दुस्थान की पूर्व से उत्तर-पश्चिम की राजनीतिक सीमा है। कुछ भूगर्भशास्त्री इसे पूर्व में ब्रह्मदेश से पश्चिम में अफगानिस्तान तक स्वीकार करते हैं। इसकी लम्बाई २५०० किलोमीटर है और यह हिन्दुस्थान की पूर्व से पश्चिम तक की गत बारह सौ वर्षों की राजनीतिक सीमा के अन्तर्गत है।

उपरोक्त सीमाएँ राजनीतिक परिवर्तनों के अनुसार मानी गयी है। इनके अनुसार हिमालय की उत्पत्ति और विस्तार नहीं हुआ है। अतः हमें वास्तविकता को जानने के लिये भारत के प्राचीन भूगोल, पुराणों एवं संस्कृत साहित्य के ग्रन्थों का अध्ययन करना आवश्यक है। इस अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि हिमालय प्राचीन भारत के मध्य में स्थित है। इसका पूर्वी छोर सिंगापुर है। यह वहां से

शुरू हो कर धनुष के आकर में भारत के मध्य से होता हुआ ईरान में पहुँचकर अपना पश्चिमी छोर बनाता है। Collins Atlas of the World के अनुसार यह सिंगापुर से ईरान तक अर्थात् पूर्वी छोर से लेकर पश्चिमी छोर तक ६००० किलोमीटर के लगभग लम्बा है। इसकी शाखायें और प्रशाखायें विभिन्न नामों से प्रायः सारे एशिया को व्याप्त करती हैं।

इतने विशाल हिमालयी क्षेत्र के जनजीवन के आंतरिक सूत्रों को जानने के लिये इस विस्तृत भूखण्ड के देशों के प्राचीन इतिहास और वर्तमान स्थिति का सिंहावलोकन करना आवश्यक है। इस दृष्टि से हम सर्वप्रथम हिमालय के पूर्वी क्षेत्र के अन्तर्गत देशों के इतिहास का विचार कर एकता के सूत्रों की खोज करेंगे।

जापान, फिलिपाइन और आस्ट्रेलिया को छोड़कर हिमालय दक्षिण-पूर्व एशिया के प्रायः सभी देशों में अपनी विभिन्न पर्वत शृँखलाओं के रूप में फैला हुआ है। इसमें वर्तमान इण्डोनेशिया (हिन्दू एशिया), मलाया, वर्मा, थाईलैण्ड, कम्बोडिया, लाओस, अन्नाम, चम्पा (वियतनाम), टोकिन, कोचीन आदि सभी देश पूर्व में भारत के अंग रहे हैं। इन सब देशों की सभ्यता और संस्कृति का मूल स्रोत भारत ही है। इसाई कालगणना की प्रारंभिक शताब्दियों में यह देश दो समूहों में बंटे थे—यथा सुवर्ण भूमि एवं स्वर्ण द्वीप। सुवर्ण भूमि में ६ देश थे—अराकान, वर्मा, स्याम (थाईलैण्ड), लाओस, कम्बोडिया, अन्नाम, चम्पा, टोकिन, चीनी कोचीन तथा स्वर्ण द्वीप में—मलाया, जावा, सुमात्र, वोरन्यो, बाली, और कुछ अन्य द्वीप थे। इन सब देशों के राजा हिन्दू थे और इन सभी क्षेत्रों में हिन्दू संस्कृति ही एकता की द्योतक थी।

प्राचीनकाल से इन देशों में हमारे ऋषि अगस्त्य का पूजन होता है। इनकी वर्तमान भाषाओं में संस्कृत के शब्दों का आधिक्य है। अधिकांश मुसलमान हो जाने के बाद भी नामकरण की हिन्दू पद्धति अभी भी चल रही है। उदाहरण के लिये इण्डोनेशिया के पहले राष्ट्रपति का नाम सुकर्णो था और उनकी पत्नी का नाम रत्नावती था।

इण्डोनेशिया के स्वतन्त्र होने पर पंडित जवाहरलाल नेहरू जी ने इण्डोनेशिया के राष्ट्रपति सुकर्णो को भारत और इण्डोनेशिया में मैत्री सम्बन्धों के लिये पत्र लिखा। सुकर्णों ने उत्तर दियाः ''भारत को हम अपनी मातृभूमि मानते हैं, इस भाव से आप को हमारे परस्पर संबंधों का पता लग जायेगा।"

इन सब देशों में बड़े-बड़े हिन्दू मंदिर हैं, जिनमें हिन्दू देवी-देवताओं की ७०-७० व ८०-८० फुट ऊँची प्रतिमायें हैं। यहाँ संस्कृत भाषा का सम्मान है। थाईलैण्ड का नाम श्रीकृष्ण के नाम पर श्यामदेश है। वहाँ के राजा की उपाधि राम है। उनके यहाँ के लोगों के नाम हमारे नामों जैसे ही है।

कम्बोडिया में अंगकोरवाट नामक सूर्य का मंदिर विश्व में उपलब्ध सब सूर्य मन्दिरों से बड़ा है। जिसकी मुरम्मत कर पुनर्जीवन प्रदान करने का कार्य भारतीय पुरातत्त्ववेताओं ने अभी कुछ वर्ष पूर्व ही सम्पन्न किया है।

नदियों के नाम गंगा और यमुना है और नगरों के अयोध्या। इन सब देशों को रामायण देश

कहा जाता है, क्योंकि रामायण और महाभारत इनके राष्ट्रीय ग्रंथ हैं।

इन देशों में गंगा जल को पूज्य मानकर उनकी पूजा अभी भी प्रचलित है। द्वितीय विश्व युद्ध के पूर्व इण्डोनेशिया और मलाया पर हालैण्ड और डेनमार्क का विदेशी राज्य था। द्वितीय विश्व युद्ध के प्रारम्भ में जापान ने उनको पराजित कर वहां अपना राज्य स्थापित कर लिया। बाद में जापान हार गया और इण्डोनेशिया मित्र राष्ट्रों के अधिकार में आ गया। उन्होंने इसे स्वतंत्र कर दिया और सुकर्णो इण्डोनेशिया का राष्ट्रपति बना, परन्तु अमेरिका ने न्यू गिनी द्वीप को अपने अधिकार में कर लिया। सुकर्णो ने कहा कि न्यू गिनी इण्डोनेशिया का हिस्सा है। अमेरिका ने कहा नहीं यह हालैण्ड और डेनमार्क का है, परन्तु सुकर्णो नहीं माने। अमेरिका ने कहा कि आप इसके लिये विश्व न्यायालय जिनेवा जायें। अतः इण्डोनेशिया की सरकार ने विश्व न्यायालय में दावा कर दिया। दूसरा पक्ष हालैण्ड, डेनमार्क का था। चार-पांच वर्ष बीत गये, परन्तु कोई निर्णय नहीं हुआ। अतः इण्डोनेशिया की सरकार ने विश्व न्यायालय के न्यायाधीश को लिखकर निवेदन भेजा कि इस मुकद्मे का निर्णय जल्दी करें। न्यायाधीश ने दोनों पक्षों को ऐतिहासिक साक्ष्य पेश करने के लिए कहा। अगली पेशी आई तो इण्डोनेशिया के प्रतिनिधि रामायण को साक्ष्य के रूप में पेश करने के लिये ले गये और न्यायधीश के सम्मुख रख दिया और कहा कि यह हमारा साक्ष्य है। न्यायाधीश ने कहा कि रामायण तो हिन्दुओं का है। उन्होंने कहा कि हम हिन्दू इत्यादि कुछ नहीं जानते, यह हमारा राष्ट्रीय ग्रन्थ है। जज ने कहा साक्ष्य बताओ। उन्होंने रामायण का वह अध्याय निकाला जहां राम सीता को खोजने के लिये हनुमान और सुग्रीव को निर्देश दे रहे हैं–जावा जाना, मलाया जाना, सुमात्रा जाना और उस क्षेत्र में भी जाना जहाँ हिमपात होता है। शायद रावण ने सीता को वहां रखा हो। जज ने कहा यह क्या साक्ष्य है? उन्होंने कहा–हमारे इण्डोनेशिया में बर्फ केवल **'न्यू गिनी'** में पड़ती है। अगली पेशी पर इण्डोनेशिया ने मुकदमा जीत लिया। जहां इण्डोनेशिया की सरकार ने अपनी राजधानी जकार्त्ता में इस विजय के उपलक्ष्य में अंतर्राष्ट्रीय रामायण महोत्सव मनाया और भारत सरकार को भी निमंत्रित किया।

भारत का इतिहास बताता है और चीन स्वीकार करता है कि उनका प्रथम राजवंश भारत के चन्द्रवंशी राजा आयु की संतान में से था। एक अन्य उदाहरण से भी यह स्पष्ट हो सकता है, कि चीन की विचारधारा और सभ्यता-संस्कृति का स्रोत भारत ही है। उदाहरण यह है कि कुछ वर्ष पहले अमेरिका स्थित चीन के राजदूत की सेवा अवधि समाप्त होने पर वह अपने देश वापस जाने के लिये तैयार हो रहा था, परन्तु जाने से पहले उसने एक पत्रकार परिषद् अपने चीनी दूतावास में बुलाई। एक पत्रकार ने चीन और भारत के परस्पर के संबन्धों के बारे में प्रश्न किया। चीनी राजदूत ने बताया– **''भारत ने हमारे देश चीन पर २००० वर्ष तक वैचारिक साम्राज्य (शासन) किया है, परन्तु एक भी सैनिक न भेजते हुए।''**

द्वितीय विश्वयुद्ध में जापान ने बम वर्षा करके चीन की अजेय दीवार को तोड़ दिया। चीनी सेना दीवार की मुरम्मत करने गयी तो उनको भग्नावशेषों में एक बड़ा डिब्बा (लोहे का) मिला। कौतुहल से उन्होंने जब उसे खोला तो उसमें मनुस्मृति की प्रति मिली जो उस दीवार के निर्माण के श्रीगणेश के शिलान्यास के समय डिब्बे में बंद कर भित्ति में दबाई थी।

अपने भारत की पुण्य नगरी कांचीपुरम् के राजा धर्मपाल अपने राज्य से सन्यास लेकर चीनियों की सेवा करने का निश्चय कर अपने साथ कुछ अपने सहयोगियों को लेकर चीन पहुँच गया और चीनियों को मानव बनाने के लिए आश्रम की स्थापना कर कार्य शुरु किया। कुछ समय कार्य करने के बाद उनको लगा कि कार्य बहुत बड़ा है और जीवन छोटा है। अतः उसने प्रतिज्ञा की कि मैं नौ वर्ष तक सोऊँगा नहीं और दिन-रात कार्य करूँगा। मानव का ध्वंस करना आसान है परन्तु मानव बनाना कठिन है और विशेषतः चीनियों को, जो चार चीजों को छोड़कर सब कुछ खा जाते हैं जो कि खाट, टेबल, हवाई जहाज़ और ऐसी ही कोई चौथी वस्तु है।

वह महापुरुष चार वर्ष तक सतत् रूप से दिन और रात कार्य करता रहा। फिर आयी नींद। यह जब आती है तो बिस्तरा लेकर नहीं आती है। नींद की खुमारी से धर्मपाल ग्रस्त हो गया। उसने भगवान से प्रार्थना की कि मैं तो आपके कार्य के ही लिये आया हूँ। मेरा तो राज्य था, सेना थी, धन-धान्य से सम्पन्न जीवन था। अतः मेरी प्रतिज्ञा मत तोड़िये। भगवान की कोई कृपा नहीं हुई। आयुर्वेद के ग्रंथ देखे ताकि नींद को कम करने की औषध मिल सके, परन्तु इसमें भी सफलता नहीं मिली। स्थानीय लोगों से उपचार का पता किया, परन्तु वे भी कुछ बता नहीं सके। ऐसी अवस्था में जब भगवान की भी कृपा नहीं हो रही है और अन्य सब उपाय विफल हो जायें तो हमारे ऋषि-मुनियों ने कहा है हिम्मत मत हारो। कुछ न कुछ करते रहो। रास्ता मिल जायेगा। उस महापुरुष ने ऐसा ही किया। वह बैठा नहीं। आश्रम के चारों ओर घूमता रहा। एक दिन एक झाड़ी के पत्ते मुँह में डाले तो उसे लगा कि नींद कुछ कम हुई है। अतः वह उस झाड़ी के पत्ते को पानी में उबालकर पीता रहा और उसने अपनी प्रतिज्ञा के नौ वर्ष पूर्ण कर दिये। इसको योग में निर्विकल्प समाधि कहते हैं। आज वह योगी धर्मपाल नहीं है। अपने लिये नहीं, परिवार के लिये नहीं, अपने देश के लिये भी नहीं, अपितु एक-दूसरे देश के लिये नौ वर्ष तक दिन और रात कार्य किया। आंतरिक एकता का यह सेवा का कार्य ही एक महत्त्वपूर्ण सूत्र है। हमारे विद्यार्थी उनको पढ़ाने वाले अध्यापक, प्राध्यापक धर्मपाल का नाम भी नहीं जानते हैं, परन्तु कुछ वर्ष पूर्व जापान में धर्मपाल के नाम पर एक अभियान चला कि उस महापुरुष ने जिस मानवीय विचारधारा का श्रीगणेश किया उसके प्रचार-प्रसार के लिये जापान के एक विश्वविद्यालय की स्थापना करेंगे।

विश्व व्यापी हिन्दू संस्कृति से कोरिया भी अछूता नहीं रहा सका। कुछ वर्ष पूर्व भारत सरकार ने अपने देश के पत्रकारों का एक शिष्टमण्डल दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों के अध्ययन के लिये भेजा। वह अपने प्रवास के कार्यक्रमानुसार कोरिया पहुँचा। वहां उनका कोरिया की सरकार के द्वारा स्वागत किया गया। चाय-पान और भोजन करने के लिये कोरिया के संयोजकों के मुखिया ने उन पत्रकारों से निवेदन किया कि आप भोजन पश्चिम पद्धति से करेंगे या कोरियाई पद्धति से। जब वे पत्रकारगण भोजन करने के लिये भोजन कक्ष में पहुंचे तो उनको आश्चर्य हुआ कि वहां न तो कुर्सियां हैं और न ही मेज। कक्ष के फर्श पर दो पंक्तियों में काठ के पीढ़े लगे हैं, बैठने के लिये और भोजन करने के लिये। पत्रकारों ने कहा कि भोजन करने की यह पद्धति तो हिन्दू है। उत्तर मिला हम यह जानते हैं कि यह

हमारी पद्धति है।

२००० वर्ष पूर्व कोरिया में हिन्दू राज्य था। उस समय की वहां की राजमाता अयोध्या की राजकुमारी थी। उसके वंश की खोज में वह शिष्टमण्डल २ वर्ष पूर्व अयोध्या पहुँचा। अपने देश के प्रमुख समाचार-पत्रों में यह समाचार छपा। राजकुमारी का वंश मिल गया। शिष्टमण्डल वापस कोरिया चला गया। परन्तु जाने के पूर्व शिष्टमण्डल के मुखिया ने प्रसन्न मुद्रा में घोषणा की कि अयोध्या के विकास के लिये जितना धन लगेगा वह कोरिया की सरकार देगी। वंश के खोजे जाने के उपलक्ष्य में कोरिया में एक बहुत बड़ा आनन्दोत्सव मनाया गया।

पौराणिक भूगोल के विषय में पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त करने वाले सागर विश्वविद्यालय (म.प्र.) के प्रो. डॉ. अली ने अपने शोध प्रबन्ध में लिखा है कि युधिष्ठिर सारे एशिया का चक्रवर्ती सम्राट था। चक्रवर्ती सम्राट अर्थात् सारे विश्व का सम्राट। जब उसका राज्याभिषेक होता था तो वह शपथ लेता था सप्तद्वीपेश्वर के नाते अर्थात् सप्त महाद्वीपों के सम्राट रूप में। भारत में ऐसे ४० चक्रवर्ती सम्राट हुये हैं और युधिष्ठिर उनमें आखिरी चक्रवर्ती सम्राट थे। उस समय न तो ईसाईयत का जन्म हुआ था और न ही इस्लाम था। सारा एशिया हिन्दू था।

द्वारिका के यादव राजा अग्रसेन ने राजसूय यज्ञ करने की योजना बनाई। इस यज्ञ को करने के लिये शर्त यह थी कि जम्बु द्वीप अर्थात् एशिया के समस्त राज्यों को अपने अधीन करने की। अतः इसके लिये दिग्विजय अभियान का सेनापति श्रीकृष्णजी के ज्येष्ठ सुपुत्र श्री प्रद्युम्न को बनाया गया। यादव वंश की १८ शाखाओं के शूरवीर उसके नेतृत्त्व में दिग्विजय अभियान में सम्मिलित हो गये। प्रद्युम्न की विजयी सेना जब कोरिया (डिमडिम देश—तत्कालीन नाम) पहुँची तो वहां चन्द्रकान्ता नदी बहती थी। हिन्दू राजा देवसुख राज्य करता था। वहां के लोग गौरवर्ण के थे। राजा ने यादव सेनापति प्रद्युम्न का स्वागत किया और उन्हें भेंट दी।

मंगोलिया में आज भी गंगाजल का पूजन होता है। जब हमारा देश विभाजित होकर स्वतन्त्र हुआ तो मंगोलिया की सरकार ने भारत की सरकार को लिखा कि भारत के साथ हमारे पुराने संबंध हैं। उनको पुनः स्थापित करने के लिये भारत से पुरातत्त्व के विशेषज्ञों का शिष्टमण्डल भेजिये। सरकार ने उनका निवेदन स्वीकार कर लिया और शिष्टमण्डल मंगोलिया जाने, देखने के लिये तैयार किया। मंगोलिया जाने के पूर्व दल का मुखिया स्व. डॉ. रघुवीर के पास गया और उसने निवेदन किया कि मैं मंगोलिया जा रहा हूँ। आप मेरा मार्गदर्शन करें क्योंकि आप चीन, मंगोलिया, रूस आदि की भाषायें जानते हैं। डॉ. रघुवीर संस्कृत के बहुत बड़े विद्वान थे और ४० भाषायें जानते थे। उन्होंने उसे कहा कि आपको सरकार आवश्यक निर्देश देगी, परन्तु आप यह ध्यान रखें कि वहां के लोग पूछेंगे कि क्या आप गंगाजल लाये हैं? अतः उनके निर्देशानुसार वह अपने साथ गंगाजल ले गया। मंगोलिया की राजधानी में शिष्टमण्डल का अच्छा स्वागत हुआ। वहां विशेषज्ञों को सम्मानित किया गया। शिष्टमण्डल के मुखिया ने भी उनको गंगाजल समर्पित करते हुए उन सभी का हार्दिक धन्यवाद किया। सभा विसर्जित हो गयी। परन्तु जनता वहीं पर रही और वह चारों ओर से शिष्टमण्डल के मुखिया की ओर दौड़ पड़ी।

वह उनमें घिर गया। वह उनकी भाषा नहीं जानता था और वे इसकी भाषा नहीं जानते थे। अतः वह चिल्लाया Interpreter,! Interpreter! । वह दुभाषिया भी जनता की भीड़ में फंसा हुआ था। उसने जोर-जोर से चिल्ला कर जनता को रोका और वह मुखिया के पास आया। कहने लगा क्या बात है? उसने कहा यह लोग क्या कर रहे हैं? मेरा भारत में परिवार है। मुझे वहां वापस जाना है। यदि ऐसा ही चलता रहा तो मेरी यहीं पर अन्त्येष्टि हो जायेगी। दुभाषिए ने कहा यह आपका अनिष्ट नहीं चाहते हैं। उसने कहा कि यह मेरा क्या भला चाहते हैं? दुभाषिये ने जो उत्तर दिया वह बड़ा महत्त्वपूर्ण है। **''उसने कहा आप भारत से आये हैं और हिन्दू हैं। यहां के लोग हिन्दुओं को देवता मानते हैं। वह आपके शरीर को स्पर्श करना चाहते हैं ताकि देवता के गुण इनमें आ जायें।''** यह उन लोगों में आन्तरिक एकता का भाव है जो अत्यन्त प्राचीन काल से परम्परा के रूप में प्रचलित है।

हिमाचल प्रदेश में कांगड़ा (हि.प्र.) के कटोच राजवंश का सतत् अस्तित्त्व दस हजार वर्षों से भी अधिक का है। इस वंश की महाभारत काल तक २३४ पीढ़ियों ने राज किया है। इस कटोच राजवंश का मूल पुरुष लगभग ११००० वर्ष पूर्व मंगोलिया से भारत आया था।

मंगोलिया की सरकार ने भारत के उपराष्ट्रपति एस. राधाकृष्णन को मंगोलिया में आमंत्रित किया। उनका वहां बड़ा स्वागत हुआ, परन्तु राधाकृष्णन जैसे मूर्धन्य विद्वान बड़े आश्चर्यचकित हुए जब उनको मालूम हुआ कि वहां के ध्वज का नाम 'स्वयम्भू' और राष्ट्रपति की उपाधि 'शम्भू' है। यह दोनों शब्द संस्कृत के हैं। वहां की भाषा में संस्कृत के शब्दों की भरमार है। हिन्दू देवी-देवताओं के वहां मंदिर है। उनके आचार-विचार, व्यवहार और मान्यताओं पर भारतीय संस्कृति का प्रभाव है।

भारतीय कालगणना के अनुसार भारतीय इतिहास का प्रथम खण्ड देवयुग है। इसकी अवधि मानवोत्पत्ति से लेकर १०,००० वर्ष है। इस में देवताओं के तीन साम्राज्य थे —(क) विष्णु का साम्राज्य, (ख) महादेव का साम्राज्य तथा (ग) ब्रह्मा का शैक्षिक और आध्यात्मिक साम्राज्य। विष्णु का साम्राज्य उत्तरी सागर से अमेरिका तक था। श्री विष्णु प्रायः योगाभ्यास के लिये उत्तरी सागर के पार चले जाते थे और उनका सुपुत्र मंगल वहां साम्राज्य का संचालन करता था। विष्णु के साम्राज्य की राजधानी बद्रीनारायण के पास विष्णुपुरी थी। श्री विष्णु के लड़के मंगल ने मंगोलिया को बसाया। अतः आज तक चले आ रहे मधुर संबंधों का यही कारण है कि मंगोलिया मूलतः हिन्दू है और वह उस भारत का हिस्सा रहा है जो सारे विश्व का गुरु था।

रूसी स्वीकार करते हैं कि उनकी भाषा में ४० प्रतिशत शब्द संस्कृत के हैं। रूस की बालकश झील के पास रहने वाले रूसियों का विश्वास है कि गंगा का पवित्र जल उस झील में आता है। रूस की दक्षिणी सीमा के साथ स्थित Caspean Sea कश्यप ऋषि के नाम पर है।

स्टालिन के समय में भारत सरकार ने विद्वानों का एक शिष्टमण्डल रूस की यात्रा के लिये भेजा। सरकारी मार्गदर्शन में उन्होंने रूस के कई स्थान देखे बाद में उन्होंने रूसी सरकारी अधिकारियों से निवेदन किया कि वे रूस के गांवों को देखना चाहते हैं। अतः वह उनको एक गांव में ले गये। वहां के लोग एक स्थान पर एकत्रित हो गए। गांव वालों ने अतिथियों का स्वागत किया, बाद में परिचय का

कार्यक्रम हुआ–दुभाषिए द्वारा। भारतीय शिष्टमण्डल में एक व्यक्ति काशी के भी थे। जब उनका परिचय हुआ तो गांव का एक सौ वर्ष से बड़ा व्यक्ति खड़ा हो गया और उसने काशी के व्यक्ति को साष्टांग प्रणाम कर कहा, **''काशी वह पुण्य स्थान है जहां से ज्ञान और विज्ञान की किरणें सारे विश्व में गयी हैं।''** काशी के बारे में रूसियों में इस प्रकार का श्रद्धा का भाव क्यों है? उत्तर है कि रूस विश्वगुरू भारत का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा था।

एक अन्य उदाहरण भारत में पोलैण्ड के राजदूत का है। उनको अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना द्वारा काशी में सन् १९९३ में आयोजित राष्ट्रीय अधिवेशन में मुख्य अतिथि के नाते आमंत्रित किया था। उन्होंने अपने भाषण के आरम्भ में कहा कि **''मेरी प्रथम जन्मभूमि पोलैण्ड है और दूसरी जन्मभूमि काशी है।''**

बाल्टिक सागर के देशों, लिटविया, आस्टोनिया, लिथुआनिया की भाषाओं में संस्कृत के शब्द ८० प्रतिशत तक है, क्योंकि महाभारत काल में पूर्वी यूरोप से लेकर सिंगापुर तक संस्कृत बोली जाती थी, पढ़ी जाती थी और लिखी जाती थी।

हिमालय के अलताई पर्वत से उत्तरी सागर तक का सारा भूभाग उत्तर कुरु कहलाता था और दक्षिण का भाग दक्षिण कुरु था। इन दोनों भागों में कुरु वंश के राज्य थे।

अपने देश के चार नाम प्रसिद्ध हैं–हिन्दुस्थान, आर्यावर्त, ब्रह्मवर्त और भारत या भारतवर्ष। यह सभी नाम अपने हैं और अपने राष्ट्रीय जीवन के विकास के परिणामस्वरूप हमें मिले हैं। हम विश्वगुरु हिन्दुस्थान, आर्यावर्त या ब्रह्मवर्त के नाम से प्रसिद्ध नहीं रहे अपितु भारत के नाम से हमने विश्व का गुरुत्व किया है। यह वही भारत है जिसके मध्य में हिमालय स्थित और उसकी शाखायें और प्रशाखायें सारे एशिया को व्याप्त करती हैं। फिर हमें विचार करना होगा कि उस भारत की सीमायें कौन सी थी? इसका उत्तर **''वेदों में भारतीय संस्कृति''** नामक पुस्तक में इस प्रकार दिया जो **'जो भूखण्ड भारत के नाम से विश्व का प्रथम गुरु रहा उसके चारों ओर चार सागर थे। उत्तर में क्षीर सागर (उत्तरी सागर) दक्षिण में हिन्दू सागर, पूर्व में प्रशांत महासागर और पश्चिम में भूमध्य सागर–यही वह भूभाग है जो जम्बूद्वीप या एशिया के नाम से जाना जाता है।'**

युधिष्ठिर इसी हिमालयी क्षेत्र का चक्रवर्ती सम्राट था। इस सारे क्षेत्र में हिन्दू संस्कृति के अवशेष मंदिरों, मूर्तियों, भवनों, दुर्गों, तीर्थस्थानों, प्राचीन सिक्कों, कलाकृतियों, जीवाश्मों, शिलाभिलेखों, परम्पराओं, किंवदंतियों के रूप में बिखरे पड़े हैं। इनके अध्ययन से आंतरिक एकता की टूटी हुई कड़ियाँ पुनः जुड़ सकती है।

उपरोक्त विश्वगुरु भारत से सुदूर पूर्व के देश भी प्रभावित थे। स्व. भिक्षु चमनलाल ने दो महत्त्वपूर्ण पुस्तकें लिखी हैं। (क) हिन्दू अमेरिका, (ख) इंडिया मदर ऑफ अस आल–इंगलैंड के प्रधानमंत्री टोनी ब्लेयर जब पहली बार निर्वाचन में खड़े हुए थे, तो उन्होंने अपने एक भाषण में कहा था –**''भारत हम सब की माता है''**। एक पत्रकार ने उनसे पूछा इसका क्या प्रमाण है? टोनी ब्लेयर ने (प्रधानमंत्री) ने कहा कि अंग्रेजी विद्वान Durand ने यह बात कही है। इस पुस्तक में लिखा है कि भारत के क्षत्रियों की धाक नार्वे, स्वीडन से जापान तक थी। जापान में हिन्दू वर्ण व्यवस्था पहले ही प्रचलित

थी। वहां सरस्वती (ज्ञान की देवी) की पूजा होती है। जापान के एक विद्वान को जापान की विचारधारा के बारे में पूछा तो उसने अंग्रेजी में कहा –"The study of the thought of Japan is the study of the Indian thought."

फिलिपायन कभी पूर्णतः हिन्दू था। आज भी कहते हैं कि फिलिपायन की लोकसभा के द्वार के ऊपर मनु की मूर्ति लगी है। नीचे अंग्रेजी में लिखा है –"The First Law - giver of Mankind"

इन स्थानों के आधार पर सारे दक्षिण-पूर्व एशिया की एकता के लुप्त अध्याय पुनः प्रकाश में लाये जा सकते हैं।

हिमालयी क्षेत्र के पूर्वी भाग के देशों का हमने सिंगापुर से वर्मा तक का विचार किया है। अब पूर्वोत्तर क्षेत्र अर्थात् मणिपुर से सिक्किम तक का भी विचार करना है।

पूर्वोत्तर क्षेत्र में सात भगिनी (Sister) राज्य हैं–मणिपुर, नागालैण्ड, मिजोरम, त्रिपुरा, मेघालय और असम। इनके अतिरिक्त पश्चिम दिशा में भूटान, उत्तर बंग और सिक्किम के तीन क्षेत्र हैं। यह क्षेत्र आजकल अशांत है और वहां पहचान का प्रश्न खड़ा हो गया है। मणिपुर में दो सरकारें हैं– नागालैण्ड में भी दो सरकारें हैं, असम में तीन हैं, त्रिपुरा की भी इसी प्रकार की हालत है। असम में ईसाई बोरो पृथक् राज्य के लिये संघर्षरत है।

अंग्रेजों ने हिन्दू समाज को विघटित करने के लिये त्रिसूत्री योजना १८५७ के युद्ध के बाद बनाई थी। क्रांतिकारी शिरोमणि लाला हरदयाल ने इसका उल्लेख अपनी पुस्तिका "My Divine Madness" में किया है कि १८५७ के बाद अपने साम्राज्य के संचालन और सुदृढ़ीकरण के लिये त्रिसूत्री योजना बनाई - 1. De-Hindunisation of the Hindus, 2. De-Nationalisation of the Hindus and 3. De-socilisation of the Hindus इसके अनुसार अंग्रेजों ने पूर्वोत्तर क्षेत्र के लोगों के बारे में लिखा है– वे वंशतः पांच समूहों के हैं - 1. Indo-Burman 2. Mangolian 3. Austrian 4. Thai and 5. Indo Tibbetan. इस विकृत इतिहास के पढ़ाए जाने के कारण वहां पहचान का प्रश्न पैदा हो गया है।

अरुणाचल प्रदेश के पूर्व राज्यपाल श्री माता प्रसाद ने "पूर्वोत्तर के राज्य" नामक पुस्तक में लिखा है कि पूर्वोत्तर के प्रायः सभी लोग वंशतः मंगोल हैं। उनके विचार के अनुसार असम के या पूर्वोत्तर के मूल निवासी बहुत कम हैं। प्रायः सभी बाहर से आये हैं। अरुणाचल में २० जातियाँ हैं। नागालैण्ड में ३५ हैं। इसी प्रकार से अन्य राज्यों की स्थिति है। परन्तु वास्तविकता क्या है? पूर्वोत्तर का इतिहास बताता है कि १३ वीं शताब्दी से लेकर १७ वीं शताब्दी तक उत्तर-पूर्व के क्षेत्र के सभी लोग इस्लाम के आक्रमणों के विरोध में एक साथ मिलकर लड़े और मुगलों को १७ बार पराजित कर उनको आगे बढ़ने नहीं दिया। यह चमत्कार कैसे हुआ? असम और आसपास के राज्यों को मुस्लिम आक्रमणकारी विजय नहीं कर सके। इसका एक मात्र कारण है कि सभी एकजुट होकर शत्रु से हिन्दू के नाते लड़े। भक्ति आन्दोलन के आचार्य शंकर महापुरुष ने पूर्वोत्तर को सुरक्षा कवच "भक्ति" के द्वारा प्रदान किया।

भूटान प्रायः धर्म से बौद्ध है। ८वीं शताब्दी में पद्मसंभव ने यहां बौद्ध धर्म शुरु किया। पद्मसंभव का भूटान, सिक्किम, लाहौल-स्पीति और लद्दाख में बहुत सम्मान है। वह महापुरुष मण्डी जिला के रिवालसर क्षेत्र का था। उनकी यह पहचान समन्वय का संदेश देती है।

सिक्किम में नेपाली अधिक संख्या में हैं। वह कट्टर हिन्दू हैं। वहां लेपचा जाति के भी लोग हैं। वह भी मूलतः हिन्दू ही हैं।

रामायण और महाभारत की कथायें असम और अन्य भगिनी राज्यों में प्रचलित हैं। ३०-३१ अगस्त सन् १९९८ को भारतीय इतिहास संकलन समिति ने सिल्चर (असम) में रामायण पर दो दिवसीय राष्ट्रीय परिसंवाद का आयोजन किया। इसमें पश्चिम बंगाल, मेघालय, मिजोरम, मणिपुर, त्रिपुरा, असम के २० विद्वानों ने भाग लिया और अपने शोधग्रंथों का वाचन किया। परिसंवाद की एक स्मारिका ''Ramayan in the North-East'' के नाम से प्रकाशित की है।

कुछ वर्ष पूर्व मैं इतिहास के कार्य के बारे में असम के प्रवास पर गया। मणिपुर में भी मेरा प्रवास था। वहां विश्व हिन्दू परिषद् और वनवासी कल्याण परिषद् के कार्यकर्त्ता मिलने आये। मैंने पूछा कार्य की क्या स्थिति है। उन्होंने कहा कि वैसे तो सब ठीक ही है, परन्तु कार्य में कुछ बड़ी कठिनाई यह है कि यहां के लोग कहते हैं कि हम हिन्दू नहीं हैं। हम मंगोल हैं। मैंने कहा कि आप क्या उत्तर देते हो। उन्होंने कहा कि हम चुप रहते हैं। दूसरी कठिनाई यह है कि जब हम गांव में कार्य करने के लिये जाते हैं तो वहां ईसाई नागा विद्रोही मिलते हैं। वह हमें कहते हैं–'अरे तुम यहां क्या करते हो? हम उत्तर देते है कि हम आपका ही कार्य करते हैं। वह फिर कहते हैं कि खबरदार और गड़बड़ मत करना'।

मैंने उन कार्यकर्त्ताओं को कहा कि जब यहां के लोग कहते हैं कि हम हिन्दू नहीं मंगोल हैं तो आपको कहना चाहिये मंगोल होने के कारण आप प्रथम श्रेणी के हिन्दू हैं और हम द्वितीय श्रेणी के। उन्होंने कहा इसका प्रमाण क्या है। तो मैंने उनको बताया कि मंगोलिया को श्री विष्णु के सुपुत्र मंगल ने बसाया था। अतः मंगोलिया का मूल पुरुष श्री विष्णु का बेटा मंगल है। यह भी उनको मैंने बताया कि मंगोलिया के लोग भारत के हिन्दुओं को देवता मानते हैं। वहां पर गंगाजल का भी पूजन होता है। यह आन्तरिक एकता के बिन्दु हैं जिनकी जानकारी सभी व्यक्तियों और विशेषतः सामाजिक कार्यकर्त्ताओं को देना आवश्यक है।

विदेशी मुस्लिम आक्रमणों के समय पूर्वोत्तर की एक पहचान थी हिन्दू। इसका प्रतिपादन इतिहासकारों ने नहीं किया है। पूर्वोत्तर क्षेत्र का प्राचीन इतिहास बड़ा गौरवशाली रहा है। कामरूप (असम) के असुर वंश के राजाओं ने प्रायः ३५०० वर्ष तक राज किया। इनकी राजधानी प्राग्-ज्योतिषपुर (वर्तमान गुवाहटी) थी। इस वंश के राजा भागदत्त का साम्राज्य बिहार से लेकर चीन तक था। महाभारत के युद्ध में राजा भागदत्त ९० वर्ष की आयु में अपनी १० लाख की सेना के साथ कौरवों के पक्ष में अर्जुन के साथ १२ दिन युद्ध करते हुए मारा गया था।

कामरूप (असम) का प्राग्-ज्योतिषपुर (गुवाहटी) प्राचीन काल में ज्ञान-विज्ञान विशेषतः

खगोल शास्त्र के अध्ययन का दक्षिण-पूर्व एशिया का बहुत बड़ा केन्द्र रहा है। आज भी वहां की एक पहाड़ी पर आकाशीय ग्रहों के अध्ययन की एक प्रयोगशाला 'नवग्रह' के नाम से मौजूद है।

नागालैण्ड राज्य में अभी भी ५० प्रतिशत नागा हिन्दू है। ये प्रायः सारे शिव उपासक हैं। वहां बड़े-बड़े शैलों के आकार में शिवलिंग हैं। पांडव जब अपने वनवास की यात्रा में नागा पहाड़ (पूर्व का नाम) में आये तो वहां की उलूपी नाम की नागा कन्या से अर्जुन का विवाह हुआ।

नागालैंड के वर्तमान नगर दीमापुर (पूर्व नाम हिडिम्बापुर) में हिन्दू काचारी जाति के राजाओं की राजधानी थी। वनवास की असम की यात्रा में भीमसेन का विवाह काचारी कन्या हिडिम्बा से हुआ था और इसी कारण काचारी अपने को भीम के वंशज कहते हैं।

अपने देश हिन्दुस्तान के स्वतंत्र होने के पूर्व मणिपुर में स्वतंत्र हिन्दू राज्य था। महाभारत काल से भी पुराना यह राज्य बताया जाता है। पांडव जब अपने वनवास के समय मणिपुर पहुँचे तो अर्जुन का दूसरा विवाह वहां की राज कन्या चित्रंगदा से हुआ। वहां के मणिपुरी हिन्दू आज भी स्वाभिमान करते है कि हम पांडवों के चन्द्रवंश से जुड़े हैं।

ब्रह्मपुत्र नदी के दक्षिण तट पर पश्चिम की ओर एक मन्दिर पांडवों के नाम से है। मेघालय में खासिया नाम की हिन्दू जाती है। इनमें से ५० प्रतिशत ईसाई हो गये हैं। "तारीखे राजगाने कदीम आर्यवर्त" में लिखा है कि देवताओं के वंश की एक खस नामक महिला से खासिया जाति का जन्म हुआ था। इसी जाति के एक परिवार के प्रसिद्ध व्यक्ति महामसिंह के पिता ने गीता का अनुवाद खासिया भाषा में किया था।

जंमतिया भी मेघालय की प्रमुख जाति है। इसका अपना राज्य रहा है। इनमें से कुछ ईसाई हो गये हैं। जंमतीया में दुर्गा पूजा का उत्सव मनाया जाता है। काली का भी पूजन होता है। इनका संपूर्ण जीवन हिन्दू है।

मेघालय की तीसरी प्रमुख जाति गारो है। इनमें से काफी संख्या ईसाई हो गई है। बाकी सभी हिन्दू है। इनके रीति-रिवाज हिन्दू ही हैं। पूर्व में मिजोरम राज्य भी असम का ही एक जिला था। इसमें अधिकांश लुशाई ईसाई हो गये है। परंतु ईसाई होने पर भी हिन्दू संस्कार उनमें अभी तक भी समाप्त नहीं हुए हैं। जब कुछ वर्ष पूर्व गुवाहटी में रामायण पर एक परिसंवाद का आयोजन किया गया था तो इसमें भाग लेने के लिए मिजोरम का भी एक ईसाई विद्वान आया था। परिसंवाद के संयोजक ने उन्हें पूछा कि तुम तो ईसाई हो और परिसंवाद रामायण पर है। उसने उत्तर दिया कि हम ईसाई हो गये हैं तो क्या हुआ। हम रामायण को भूल नहीं सकते, क्योंकि रामचन्द्र के भाई लक्ष्मण ने हमारे पूर्वजों को धान की खेती करने की विधि सिखाई थी।

अरुणाचल प्रदेश हिमालय की गोद में बसा है। इसमें अपातानी, मिसमी, डफला, मीरी आदि २० प्रमुख जातियां हैं। यह क्षेत्र भी पहले असम में ही था। यहां पर पूर्व में असम के हिन्दू सूतियावंश का राज्य था और अरुणाचल प्रदेश की वर्तमान राजधानी ईटानगर उनकी राजधानी थी। अंग्रेजों ने इसे असम से पृथक् कर दिया।

मिसमी अरुणाचल प्रदेश की एक प्रमुख जाति है। यह सभी गोरे रंग के होते हैं और सिर पर मयूर के पंखों का मुकुट धारण करते है और यह अपने को रुक्मिणी के वंशज कहते हैं। रुक्मिणी के पिता भिष्मक का भिष्मक नगर अरुणाचल प्रदेश में पूर्व की ओर था। इस नगर के अब केवल अवशेष बाकी हैं।

इस शोधपत्र के गत पृष्ठों में हिमालयी क्षेत्र की एकता के आंतरिक सूत्रों पर ऐतिहासिक संदर्भ में प्रकाश डाला गया है। परंतु दिव्य हिमालय का इतना ही योगदान नहीं है। अपितु वह सारे विश्व में फैली मानवों की आंतरिक एकता का भी घोष 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के नाते करता है।

पाश्चात्य नृशास्त्रियों ने सारे विश्व के मानवों को वंशतः तीन वर्गों में विभक्त किया है – यथा आर्य, मंगोल और हवशी। इन तीनों वर्गों के लोगों की शारीरिक रचना, रंग, कद इत्यादि के बारे में जो लिखा है वह इस प्रकार है –

आर्य : कद लम्बा, रंग गोरा, आंखें बड़ी-बड़ी, मुख का आकार लम्बूतरा, नाक नुकीली।

मंगोल : कद छोटा, शरीर गठीला, रंग पीला, सिर गोल, आंखे छोटी, दाड़ी और मूछों के बाल कम और नाक चपटी।

हवशी : रंग काला, कद ऊँचा, होंठ ऊपर की ओर उठे हुए इत्यादि। इनके रहने के क्षेत्रों के बारे में लिखा है कि हिन्दुस्तान से आरम्भ कर पश्चिम में इंग्लैंड तक के लोग आर्य हैं। हिन्दुस्तान से पूर्व की ओर जापान तक के निवासी मंगोलियन हैं। हवशियों का वास स्थान अफ्रीका है।

भारतीय प्राणीशास्त्र, मानवों के उपरोक्त वर्गीकरण को अस्वीकार करता है। इसके अनुसार प्राणी ८४ लाख योनियों को पार कर मनुष्य के नाते जन्म लेता है और वह मूलतः एक ही जोड़े से उत्पन्न हुआ है।

इस पृथ्वी का वह पुण्य क्षेत्र जहां पहले मानव का आविर्भाव हुआ, संस्कृत में उसके ६ नाम हैं और वह हिमालय के मध्य में सुमेरू पर्वत पर स्थित है। यह पवित्र भू-भाग हिन्दुस्तान के वर्तमान कश्मीर प्रदेश, तिब्बत, कैलाश पर्वत और मानसरोवर के मध्य स्थित है। गंगा इसी सुमेरू पर्वत से उतर कर गंगोत्री से निकलती है। यह क्षेत्र त्रिकोणात्मक है और चारों और से दुर्गम्य पर्वत शृंखलाओं से घिरा है। इसके नाम इस प्रकार है – खे, द्यो लोक, देव लोक, देवसर, बिन्दुसर, तिरोशलिया, तिरोवालिया, नाक, त्रिविष्टप।

भारतीय वैज्ञानिक कालगणना बताती है कि आज से १,९७,२९,४९,११२ वर्ष पूर्व चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को पहले मानव का प्रादुर्भाव उपरोक्त क्षेत्र में हुआ और वह भी हिमालय के अंतर्गत भारत में। आज इस पुण्य भू-भाग पर चीन ने अधिकार कर लिया है। यही वह भू-स्थल है जहां से सभी जातियों, सभी राष्ट्रों, सभी धर्मों, ज्ञान-विज्ञान और सभी शास्त्रों का उदय हुआ है।

मानवोत्पत्ति की उपरोक्त अवधारणा से यह स्पष्ट हो जाता है कि मनुष्य कद से चाहे लम्बा हो या छोटा हो, काले रंग का हो या गोरे रंग का, बड़ी आँखों वाला हो या छोटी आँखों वाला, चपटे नाक वाला हो या नोकीले नाक वाला हो, वह मूलतः एक ही वंश अर्थात् मानव वंश का है। इसी

वैज्ञानिक तथ्य के आधार पर 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के मानवीय एकता के वैज्ञानिक सिद्धान्त का प्रतिपादन हुआ और दिव्य हिमालय विश्व के सर्व मानवों की आन्तरिक एकता का यही संदेश—वसुधैव कुटुम्बकम् है।

संदर्भ पुस्तकें :

१. Discover India Series-The Himalayas : Navnit Parekh

२. Uttarakhand-Garhwal, Himalayas : K.S.Fonia

३. Greater India : Arun Bhattacharjee

४. Hindu Colonies in the Far-East : R.C.Majumdar

५. Exploration in Tibbet : Swami Pravanand

६. कैलाश, मानसरोवर : ब्रजराज शरण गुप्त

७. विश्वव्यापी भारतीय संस्कृति : श्री रघुनन्दन प्रसाद शर्मा

८. मणिमहेश : उमा प्रसाद मुकर्जी

९. प्राचीन भारत का प्रमाणिक इतिहास : पन्ना लाल गुप्त

१०. वेदों में भारतीय संस्कृति : संपूर्णानंद, हिन्दी अकादमी (उ.प्र.)

११. पूर्वोत्तर के राज्य : माता प्रसाद (पूर्व राज्यपाल, अरुणाचल प्रदेश)

१२. विश्व गुरु : भंडारी हुल्कर, हिन्दी अकादमी इन्दौर (म.प्र.)

१३. तारीखे राजगाने कदीम आर्यवर्त(उर्दू) : डॉ. नगीना राम परमार

सिकन्दर न तो महान था न विश्व विजेता

सत्यवादी और पूर्वाग्रह मुक्त अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने भारत की श्रेष्ठता को बिना किसी हिचकिचाहट के स्वीकार किया है। एक सुप्रसिद्ध अमेरिकी विद्वान् बिल ड्यूरंट के भारत के बारे में अभिव्यक्त उद्‌गार उल्लेखनीय है –

India was the mother land of our race and Sankrit, the mother of our Philosophy; mother through the Arabs, of much of our mathematies; mother through the Budha, of the ideas embodied in christianity; mother through the village community, of self government and democracy. Mother India is in many ways the mother of us all.

अर्थात् भारत हमारी वंश परम्परा की मातृभूमि है और संस्कृत हमारे दर्शन की जननी। इस माता ने अरबों के माध्यम से हमें गणित दिया, बुद्ध के माध्यम से हमें वह आदर्श दिए जो ईसाईयत के मूलभूत सिद्धान्त हैं। ग्रामीण समुदाय के माध्यम से इस माता ने हमें स्वायत्त शासन और लोकतन्त्र दिया। भारतमाता सम्बन्धों से हम सब की माता है।

दूसरी ओर अधिकतर विदेशी साम्राज्यवादी इतिहासकारों और उनके अनुयायी तथाकथित धर्मनिरपेक्ष भारतीय इतिहासकारों द्वारा लिखित इतिहास की सबसे बड़ी दुर्बलता है कि उसमें विदेशी आक्रमकों और शासकों की केवल सफलताओं का ही उल्लेख मिलता है और उनकी विफलताओं को या तो दुर्लक्षित कर दिया गया है या दबा दिया गया है। इतना ही नहीं उसमें पूर्वाग्रहों को भी स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। साधारणतः यह विश्वास किया जाता है कि हमें अतीत की ऐतिहासिक जानकारी केवल लिखित सामग्री से ही मिल सकती है परन्तु पूर्वाग्रहों और दुराग्रहों के आधार पर जो बातें इतिहास में अंकित की जाती है, उनसे महत्वपूर्ण वे बातें होती है जो अनकही होती है।

इतिहास के शोधकर्ताओं को सम्बन्धित काल एवं क्षेत्र के इतिहास को झांक कर गहराई और सावधानी से उसकी समीक्षा कर अनकही बातों को खोज निकालना चाहिये यथा 'एलेग्ज़ेडर दि ग्रेट' नामक प्रभावशाली पुस्तक के लेखक - राबिन सैन फाक्स अपनी इस पुस्तक के प्रारम्भ में लिखते हैं – सिकन्दर के बारे में समकालीन लेखकों ने २० पुस्तकें लिखी थी। उनमें से कोई भी जीवित नहीं बचा। आमतौर पर विश्वास किया जाता है कि अतीत के बारे में ऐतिहासिक जानकारी केवल लिखित सामग्री से ही मिल सकती है परन्तु सिकन्दर के बारे में भी जो लिखित सामग्री और प्रमाण मिले हैं उनमें से अधिकांश में तारतम्य दिखाई नहीं देता है तथा कुछ तथ्य बड़े अजीब से लगते हैं। अतः इस पुस्तक का

महत्त्व इस बात में है कि फाक्स ने सिकन्दर के बारे में लिखित मान्यताओं से परे हट कर तत्कालीन इतिहास में झांक कर बड़ी सावधानी से अनकही बातों को तलाश कर डाला है और प्रभावशाली ढंग से सही और सत्य तथ्यों के आधार पर अतीत की कहानी लिखी है।

पुरु और सिकन्दर के झेलम के युद्ध के इतिहास की खोज विख्यात इतिहासकार राबिन सैन फाक्स की तरह भारत के दो इतिहासकारों – प्रो. हरिशचन्द्र सेठ एवं श्री एस.एल. बोधकर ने सिकन्दर के बारे में उपलब्ध लिखित इतिहास से परे हट कर पूर्वाग्रहों और दुराग्रहों से बचकर तत्कालीन इतिहास में झांक कर सत्य तथ्यों को ढूढं निकाला है और यह स्थापित किया है कि पुरु (पोरस) ने सिकन्दर को पराजित किया है। सिकन्दर को पुरु के सामने संधि का प्रस्ताव रखना पड़ा। पुरु ने परिस्थिति की गम्भीरता को समझा और कूटनीतिक दृष्टि से यह सन्धि प्रस्ताव स्वीकार किया।

जम्मू राज्य के विद्वान् लेखक श्री नरसिंहदास नरगस अपनी पुस्तक 'तारीख-ए-जदीद डोगरा देश' में लिखते हैं कि सिकन्दर द्विगर्त प्रदेश में चन्द्रभागा नदी के क्षेत्र में डोगरों के साथ लड़ता हुआ किसी वीर डोगरा के हाथों मारा गया था। इसीलिये यूनानियों ने इस क्षेत्र को सैण्ड्रो फागस (डिवॉरर ऑफ एलेग्जेण्डर) अर्थात् सिकन्दर का नाश करने वाला कहा है।

नरसिंहदास नरगिस के अनुसंधान के अनुसार द्विगर्त क्षेत्र जम्मू में दो प्रसिद्ध राज्य थे - अभिसार और कथोई। अभिसार वह स्थान है जिसे आज पूंछ कहा जाता है। कथोई रावी नदी के किनारे बसा था और उसकी राजधानी सांकल (स्यालकोट) थी। सटरेबो लिखते हैं कि कथोई एक महान् गणतन्त्र था जो पर्वत की तलहटी में रावी नदी के किनारे दूर-दूर फैला हुआ था।

अभिसार के राजा ने सिकन्दर से हार स्वीकार कर ली थी, परन्तु कथोई गणतन्त्र ने सिकन्दर के आगे झुकने से इन्कार कर दिया। कथोई को वर्तमान में कठुआ कहा जाता है। उच्चारण भेद से यह एक ही स्थान के दो नाम हैं।

कथोई गणतन्त्र की सेना ने पहाड़ की तलहटी में 'वासी लोई' (बसोहली) के निकट सिकन्दर का सामना किया। सटरेबो ने लिखा है कि ये लोग बहादुरी और मरदानगी से अतुलनीय थे। वे सिकन्दर के विरुद्ध संगठित होने से पूर्व अभिसार और पोरस के राज्यों (चिनाव और झेहलम के मध्य जिसमें जम्मू व कश्मीर का कुछ भाग भी सम्मिलित था) को परास्त कर चुके थे। उन्होंने सिकन्दर का सामना करने के लिए शाक्त व्यूह बनाया था जिसे अंग्रेजी में Waggon Formation कहते हैं। वे बहादुरी से लड़े और शस्त्र डालने को तैयार नहीं हुए। इस युद्ध में अभिसार, टैक्सला और पोरस की सेनाएं भी सिकन्दर की कमान में थी। बसोहली के निकट के इस युद्ध में कथोई सेना ने अद्‍भुत जौहर दिखाए और सिकन्दर को मौत के घाट उतार दिया।

सिकन्दर के आक्रमण के समय और उसके पहले भी डोगरों की यह धरती छः त्रिगर्त गणराज्यों में विभक्त थी। हिन्दू पोलिटी (Hindu Polity) के विद्वान् लेखक बैरिस्टर काशीप्रसाद

जयसवाल के अनुसार ये गणराज्य हिमाचल के दामन में तत्कालीन कांगड़ा और जम्मू में फैले हुए थे। इस गणराज्यों ने मिलकर अपना एक संघ बनाया था जो इतिहास में **त्रिगर्त पष्ठाः** के नाम से जाना जाता है।

त्रिगर्त संघ के गणराज्यों के नाम कौण्डोपरथ, दाण्डकि, क्राटिक, जालमानि, ब्रह्मगुप्त तथा जालकि थे। इनके साथ डोगरों के दो गणतन्त्र कथोई और साभूति के संघ को द्विगर्त कहा जाता था। गर्त गढ़े को कहते है, परन्तु इसका प्रयोग घाटी, घर, नगर और देश अर्थ में प्रचलित हुआ है। रूसी भाषा का ग्राड संस्कृत के गर्त से ही बदल कर बना है और नगर के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, जैसे, स्टालिन, लेनिनग्राड आदि। कथोई और साभूति गणराज्य में सैनिक शिक्षा प्रत्येक पुरुष को अनिवार्य थी। इन दोनों डोगरा गणतन्त्र राज्यों में नियमानुसार चुनाव हुआ करता था। जनता उसे किसी भी समय गद्दी से उतार सकती थी। सिकन्दर के साथ यात्रा करने वाले इतिहासकारों को ऐसा ही अनुभव था।

सिकन्दर को चन्द्रभागा के आस-पास के क्षेत्र (डोगरों के क्षेत्र) में निसंदेह अवर्णनीय कठिनाईओं का सामना करना पड़ा था। वैदिक इण्डिया के लेखक डाक्टर जैनाइडीए रेगोजिन (Zenaidea-ragozim) ने लिखा है कि पंजाब की यूनानियों को अच्छी जानकारी थी और इसमें बहने वाली नदियों के यूनानी भाषा में अलग-अलग नाम उन्होंने रखे थे। स्थानीय नामों को थोड़ी सी झलक इन यूनानी नामों में जरूर विद्यमान रही। अंतिम पश्चिमी नदी झेलम (वैदिक वितस्ता) को उन्होंने हाईडसपैस (Hydaspes) बना दिया। दूसरे स्थान पर चिनाव आता है। इसका वैदिक नाम असिकनी (Asikni) है। यूनानियों ने इस का नाम एकेसीनज (Akesions) रखा। झेलम से मिलने के पहले यह मरुदवृधा (Marudvridha) अर्थात् The wind swelled कहलाता है। इससे काफी पीछे ढलवानी क्षेत्र में इसका संस्कृत नाम चन्द्रभागा (Chandra Bhaga) है। चन्द्रभागा को यूनानियों ने सैन्डरोफागस (Sandro-Phagas) का नाम दिया है जिसके साथ सिकन्दर के सैनिक अभियान की एक कथा जुड़ी है। यूनानी नाम का अंग्रेजी अनुवाद है ''Devourer of Alexander'' जिसका अर्थ है सिकन्दर को खा जाने वाला, हलाक या नष्ट कर देने वाला, हड़प कर देने वाला। इसको यूनानियों ने अशुभ मानकर वापस चले जाने का निर्णय लिया।

इससे यह परिणाम निकालना कुछ कठिन नहीं है कि सिकन्दर चन्द्रभागा के क्षेत्र में वीर डोगरों के साथ लड़ते-लड़ते मारा गया था। यूनानी सेना इस की लाश लेकर पीछे हटी। सतलुज और व्यास के संगम से सिकन्दर के पीछे हटने की कहानी यूनानियों ने स्वयं इस लिए फैला दी होगी कि भारतीयों को सिकन्दर की मृत्यु का ज्ञान न हो। यह असंभव नहीं कि ब्लूचिस्तान की सीमा तक एण्ट्रीओकोस (Antiochous) सेक्लूक्स (Seleucus) या दूसरा सेनापति सिकन्दर की भूमिका अदा करता रहा हो। पुराने समय में ऐसा ही रिवाज था।

सन् १२२० में जब चंगेज खां (चूहे के साल और बारह दरन्दों की सायल में) चीन की सुंग (Sung) राजधानी की ओर बढ़ते हुए अकस्मात् इस नाशवान संसार से चल बसा तो उसके नाशवान शरीर को भी सावधानी के साथ मरुभूमि गोबी तक ले जाया गया था कि किसी को चंगेज खां की मृत्यु का ज्ञान न हो। यद्यपि चंगेज खां के लाश के रथ की रक्षा करने वाले योद्धा तातरियों ने रेगिस्तान गोबी तक अपने मार्ग में जिस भी मानव अथवा जानवर को देखा, उन्हें निर्दयता से मार दिया गया और रास्ते में आने वाली हर बस्ती को जलाकर धूल में बदल दिया। हरोलड लैम्ब (Harold Lamb) ने अपनी पुस्तक ''चंगेज खां'' (Genghis Khan) में लिखा है कि बादशाह की लाश के साथ यात्रा करने वाले सैनिकों और सेना अध्यक्षों ने अपने स्वामी की मृत्यु पर रोना उस समय आरंभ किया जब व रेगिस्तान गोबी की सीमा में प्रवेश कर चुके थे। इस तरह यह संभव है कि सिकन्दर की मृत्यु पर यूनानी सेनाधिकारियों ने वेवीलोन (Babylon) पहुंच कर पर्दा उठाया हो। यदि सिकन्दर जीवित होता तो इस बात का कोई कारण नहीं था कि फौज का एक भाग नियारकस (Nearchos) की अध्यक्षता में सागर के मार्ग से यूनान लौटता, दूसरा बलोचस्तान के मार्ग से पीछे हटता और एक बहुत बड़ा सेना का भाग बाबल और बलोचस्तान के मध्य भटकता हुआ रह जाता। सबसे बड़ी बात कि चन्द्रभागा के डोगरा क्षेत्र को (Devourer of Alexander) के नाम से याद करने का कोई अन्य कारण तर्कसंगत नहीं हो सकता।

सिकन्दर के मारे जाने के बाद त्रिगर्त प्रदेश के आयुधजीवी सैनिकों की शौर्य गाथाओं को सुनकर यूनानी सैनिक भयभीत हो गए। सिकन्दर ने व्यास नदी के तट पर अपने सैनिकों को उत्साहित करने के लिए बड़ा जोशीला भाषण दिया। सिकन्दर के भाषण देने की यह कहानी बनाई गई है। भाषण वास्तव में सिकन्दर का नहीं, उसकी वेशभूषा में किसी अन्य यूनानी जनरल हुआ था। इस भाषण का कोई प्रभाव नहीं हुआ और यूनानी सेना वापिस यूनान लौट गई।

ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान नेरी में कार्तिक शुक्ल ५,६,७ कलियुगाब्द ५१०८ तदनुसार २७, २८,२६ अक्तूबर, २००६ को आयोजित त्रिदिवसीय राष्ट्रीय परिसंवाद में मूर्धन्य विद्वानों के शोध पत्रों से निष्कर्षतः इसी सत्य का प्रकटीकरण हुआ है कि तथाकथित विश्वविजेता सिकन्दर महान्, न तो महान् था और न ही विश्वविजेता था, क्योंकि भारतवर्ष की धरती पर उसका विश्वविजयी बनने का अभियान बुरी तरह ध्वस्त होने के साथ ही उसकी महानता का गरूर भी चूर हो गया था। इतिहास का यह सत्य हमारे राष्ट्रीय गौरव एवं शौर्य परम्परा का प्रमाण है।

कटोच राजवंश और उसका इतिहास

हिमालय की गोद में शिवालिक की हरी-भरी पहाड़ियों की सुन्दर, समतल, उपजाऊ, रमणीक और आकर्षक उपत्यकाओं में स्थित उत्तर भारत के पर्वतीय प्रांत हिमाचल प्रदेश का कटोच राजवंश वर्तमान विश्व का सबसे प्राचीन राजवंश है। यह राजवंश अपनी नैतिक विशेषताओं और मौलिकता के कारण वर्तमान में भी विद्यमान है। इस का वर्तमान ४८८वां राजा आदित्य देव चन्द्र और उनकी रानी चन्द्रेश कुमारी हैं। महाभारत के पूर्ववर्ती इसके २३३ राजाओं की वंश सूची उपलब्ध है। यह वंश प्रारम्भ से यथावत् अनेक राजनीतिक उथल-पुथलों और भौगोलिक परिवर्तनों के बावजूद निरन्तर, अक्षुण्ण और अटूट रहा है।

वर्तमान में वैवस्वत मन्वन्तर चल रहा है। इसमें दो प्रसिद्ध राजवंशों की स्थापना हुई। पहला सूर्यवंश है जिसकी स्थापना अयोध्या में स्वयं वैवस्वत मनु ने की थी और उनकी सुपुत्री इला ने चन्द्रवंश की स्थापना प्रयाग में की थी। भारत के प्रायः सभी राजवंश इन्हीं दो वंशों से निकले हैं। कालक्रम में यह दोनों वंश अनेक शाखाओं और प्रशाखाओं में विभक्त हो गये और उनका अभी विशेष कोई प्रतिनिधि उपलब्ध नहीं है परंतु कटोच वंश के बारे में यह विशेष बात है कि इसका प्रतिनिधि राजा आदित्य देव चन्द्र अपनी पुरानी राजधानी लम्बागांव में मौजूद है।

डा. अलैग्जेन्डर एच. कनिंघम ब्रिटिश सेना के अधिकारी एवं इतिहासकार का मत है कि कटोच शाही परिवार के राजा जब कांगड़ा (त्रिगर्त) की पवित्र भूमि पर राज्य कर रहे थे तो पाश्चात्य जगत (यूरोप) पूर्णतः असभ्य और बर्बर था। केवल रोमन साम्राज्य ने अपनी कुछ-कुछ आंखें खोलीं थीं। विख्यात कूटनीतिक और द्वितीय विश्व युद्ध के समय ब्रिटेन के प्रधानमन्त्री विंस्टन चर्चिल अपनी पुस्तक "The History of English Speaking People" में लिखते हैं कि २२सौ वर्ष पूर्व इंग्लैंड के लोग गुफाओं में रहते थे और मानव बलि देते थे। भूगर्भ शास्त्रियों का कहना है कि ७००० वर्ष पूर्व सारा यूरोपीय महाद्वीप ५०० फुट गहरे बर्फ के नीचे दबा हुआ था। इसका इतिहास केवल २५०० वर्षों का है, परन्तु कटोच वंश का इतिहास ८००० वर्षों का है। हिमाचल प्रदेश के लिए यह गौरव का विषय है कि इस प्रकार का प्राचीन राजवंश इस देव भूमि में अब भी गौरव के साथ स्थित है।

कटोच वंश का उद्गम

इस वंश का संस्थापक भूमि चन्द्र माना जाता है जो मनुष्य से उत्पन्न नहीं हुआ था अपितु दैवी शक्ति से युवा अवस्था में पैदा हुआ था। यह भी बात प्रचलित है कि इस वंश का यह आदिपुरूष कांगड़ा की बज्रेश्वरी देवी के श्रम और सीकरों से उत्पन्न हुआ था। “हिमाचल प्रशस्ति” के विद्वान

लेखक श्री गोपाल शास्त्री का कथन है कि या तो यों कहिए कि जैसे शंकर के संकल्प से "वीरभद्र" उत्पन्न हुआ था, इसी प्रकार भवानी देवी ने अपने संकल्प से भूमि चन्द्र को पैदा किया था।

कुछ इतिहासकारों का मत है कि कटोच वंश का संस्थापक सुशर्म चन्द्र था। भूमि चन्द्र को उन्होंने Mythology (मिथक) के गर्त में धकेल दिया है और भिन्न भिन्न प्रकार की कल्पनाओं का आविष्कार कर उसके इर्द-गिर्द काल्पनिक मायाजाल बुन डाला है।

हमारे देश के इतिहास में कभी भी मिथकों (Mythology) का निर्माण नहीं हुआ। ज्ञान-विज्ञान के गूढ़ रहस्यों को समझने और समझाने के लिए हमारे ऋषि-मुनियों ने सत्य कथाओं और प्रतीकों को माध्यम बनाया। मिथकों का कभी निर्माण नहीं किया। हमारे देवी-देवता के दो प्रकार हैं – एक ऐसे जिनके माता-पिता हैं और उनके रहने के स्थान भी हैं और दूसरे प्रतीकात्मक।

मिथकों का निर्माण

मिथकों (Mythology) का निर्माता यूनान है। उसके सारे देवता मिथक अर्थात काल्पनिक हैं। उनके न तो माता-पिता हैं और न ही रहने के स्थान। सिकन्दर की माता यूनान के देवता हरकुलीस की पूजा करती थी। यह देवता कल्पना पर आधारित है। यूरोप की सभ्यता, संस्कृति और इतिहास का पिता यूनान माना जाता है। अतः यूनान से मिथकीय परम्परा (Mythology) यूरोप पहुंची और सारे पाश्चात्य जगत में फैल गई और वहीं से यह पाश्चात्य इतिहासकारों के द्वारा हमारे देश में पहुंच गई और उनके अनुयायी तथाकथित धर्मनिरपेक्ष भारतीय इतिहासकारों ने भी इन अंग्रेज शासकों और पाश्चात्य इतिहासकारों के दावों को स्वीकार कर लिया और हमारी वैदिक तथा अन्य देवी-देवताओं को Mythological घोषित कर दिया जो पूर्णतः असत्य है।

"तारीख-ए-राजगाने कदीम आर्यवर्त" पुस्तक के लेखक विख्यात इतिहास वेता और महा विद्वान ठाकुर नगीना राम अपनी इस पुस्तक में लिखते हैं कि कटोच वंश का प्रवर्तक भूमि चन्द्र १० हजार वर्ष पूर्व मंगोलिया से भारत आया था। इस तथ्य का अनुसंधान करने के लिए भारतीय इतिहास के आदियुग (देव युग) तक जाना आवश्यक है। इस पृथ्वी पर प्रथम मानवोत्पति से लेकर १० हजार वर्ष तक भारत के इतिहास का आदि काल खण्ड 'देव युग' है। इसमें देवताओं के तीन साम्राज्य थे। (१) श्री ब्रह्मा जी का विश्व का प्रथम आध्यात्मिक और शैक्षिक साम्राज्य जिसकी राजधानी सुमेरु पर्वत पर मनोवती थी। (२) महादेव का साम्राज्य जिसकी राजधानी कैलाशपुरी थी और तीसरा साम्राज्य विष्णु का था। उसकी राजधानी बद्रीनारायण के उत्तर में मंगोलिया के निकट विष्णुपुरी थी। विष्णु योग का अभ्यास करने के लिए क्षीर सागर पार चले गये और उनकी अनुपस्थिति में साम्राज्य की देखभाल उनका सुपुत्र मंगल करता था। मंगल ने अपने नाम पर मंगोलिया के राज्य की स्थापना की। उन्होंने दूसरा राज्य प्राग्ज्योतिषपुर (असम) में स्थापित किया और तीसरा कांगड़ा की पहाड़ियों में। अतः इस प्रकार सब मंगोल विष्णु की संतान हैं। उस युग में न ईसाईयत थी और न ही इस्लाम। सारा विश्व वैदिक सांस्कृतिक साम्राज्य के अंतर्गत था। अतः मंगोलिया के साथ हमारे पुराने संबंध हैं। वहां आज भी गंगाजल का पूजन है। उनकी भाषा में संस्कृत के बहुत शब्द हैं। आजकल भारत में मंगोलिया

का जो राजदूत है वह संस्कृत का विद्वान है। भारत का जो राजदूत मंगोलिया में है उसका कहना है कि भारत के बारे में मंगोलिया को जितनी जानकारी है उतनी किसी अन्य देश को नहीं है। अतः कटोच वंश के प्रवर्तक भूमि चन्द्र का मंगोलिया से भारत आना तर्कसंगत लगता है।

कुछ इतिहासकारों का मत है कि भूमिचन्द्र की उत्पत्ति से राजपूत नस्लें तीन वंशों में विभक्त हो गयीं – भूमि चन्द्र वंश, चन्द्र वंश और सूर्य वंश। भूमि चन्द्र Earth Born (भूमि से उत्पन्न), चन्द्र वंश Moon Born (चन्द्र से उत्पन्न) और सूर्य वंश Sun Born (सूर्य से उत्पन्न)- इस प्रकार इन तीनों राजवंशों को Mythology (मिथक) में धकेल दिया है। भूमि चन्द्र जमीन से पैदा नहीं हुये। कटोच वंश की स्थापना वैवस्वत मन्वन्तर के २८वें महायुग के द्वापर में हुई थी। अतः इन तीनों वंशों को एक साथ मिलाना गलत है।

कटोच वंश का इतिहास

जनता में यह भी किन्वदन्ति प्रचलित है कि कटोच वंश के संस्थापक अंबिका देवी के पसीने से पैदा हुये थे। कथा इस प्रकार है कि जब अंबिका रक्तबीज राक्षस, जिसे यह वरदान था कि उसके रक्त की जितनी बूंदें जमीन पर पड़ेंगी उतने ही और रक्तबीज पैदा हो जायेंगे, उस राक्षस से लड़ते-लड़ते माता थक गयीं और उनका शरीर पसीने से तर बतर हो गया। उसने अपने माथे का पसीना पोंछा और उसकी एक बून्द भूमि पर गिर पड़ी। उससे भूमि चन्द्र पैदा हुये। उन्होंने राक्षस को मारने के लिए देवी की सहायता की। इस कारण अंबिका ने अति प्रसन्न होकर तिब्बत से लेकर दक्षिण गुजरात के सागर तटवर्ती क्षेत्र कच्छ तक का क्षेत्र "राजनायक" की उपाधि सहित राज्य के रूप में भूमि चन्द्र को प्रदान कर दिया।

कटोच वंश के राज्य का मध्यवर्ती क्षेत्र त्रिगर्त रहा है। गर्त का अर्थ गढ़ा (संस्कृत में) होता है, परन्तु इसका अर्थ नगर, देश भी होता है। जैसे लेनिनग्राड, स्टालिनग्राड। ग्राड शब्द संस्कृत के शब्द गर्त का अपभ्रंश है। इसे तीन नदियों - सतलुज, ब्यास और रावी की गहरी घाटियों के कारण त्रिगर्त कहा जाता है। इसकी सीमायें हिमाचल प्रदेश के पूर्व में सतलुज नदी से लेकर पश्चिम में रावी नदी तक और दक्षिण में जालन्धर दोआबा से मुलतान तक थी। इसकी तीन राजधानियां थीं। मुलतान और जालन्धर सर्दी की राजधानियां थीं और ग्रीष्म काल की नगरकोट (कांगड़ा) थी।

त्रिगर्त के सामाजिक जीवन, सांस्कृतिक परम्पराओं, मान्यताओं और धार्मिक अनुष्ठानों का विस्तारपूर्वक वर्णन महाभारत पद्म पुराण, विष्णु पुराण, राजतरंगिणी, हेमकोष आदि ग्रन्थों में है; परन्तु इस सामग्री का संकलन और अनुसंधान लेखनार्थ नहीं हुआ है।

इस वंश के ४८७ राजा हुये हैं और वर्तमान ४८८वें राजा आदित्य देव अपनी पुरानी राजधानी लम्बाग्राम में रहते हैं। इस वंश के महाभारत पूर्ववर्ती लगभग २३३ राजा हुये हैं। अतः इस राजवंश का इतिहास ८००० वर्ष का है। इतने लम्बे इतिहास को एक लेख में आबद्ध करना गागर में सागर भरने के समान है। अतः सुविधा की दृष्टि से इस को चार भागों में विभक्त किया है –

(१) पहला भाग वंश की स्थापना से २३४वें राजा सुशर्म चन्द्र तक

(२)	दूसरा भाग सुशर्म चन्द्र से ४३०वें राजा जयचन्द्र तक अर्थात कलियुग के प्रारम्भ से ४००२ वर्ष तक (ई.पू. ३१०१ से ईस्वी सन ६०२ तक)

(३)	तीसरा भाग ४३०वें राजा जयचन्द्र से ४८१ वें महाराजा संसार चंद तक अर्थात कलियुग ४००२ से ४६२५ तक (ईस्वी सन् ६०२ से १८२३)

(४)	चौथा भाग कलियुग ४६२५ से लेकर के ५१११ (ईस्वी सन् १८२३ से २००६) तक है।

(१)	पहले भाग के प्रायः २३३ राजाओं का इतिहास उपलब्ध नहीं है। इसकी सामग्री संस्कृत के ऐतिहासिक ग्रन्थों में बिखरी पड़ी है। उसे संकलित कर अनुसंधान करना इतिहास के शोध का विषय है।

(२)	दूसरे भाग में १६६ राजा हुये हैं। उनमें से अधिकांश का इतिहास उपलब्ध नहीं है। इतिहास लेखन की भारतीय परम्परा के अनुसार जिन राजाओं के राज्यकाल में देश, समाज, धर्म, संस्कृति की दृष्टि से कोई योगदान नहीं हुआ हो लेखन में केवल उनके नामों का ही उल्लेख होता है। इस दृष्टि से इस भाग में केवल दो ही राजाओं का उल्लेख किया गया है। प्रथम राजा है महाभारतकालीन सुशर्म चन्द्र जिसका उल्लेख पूर्व के पृष्ठों में हो चुका है। उसने अपने नाम पर सुशर्मपुर नगर (कांगड़ा) बनाया था। उसके राज्य काल में त्रिगर्त वैभव सम्पन्न था। उस समय पंजाब नाम से कोई स्थान व क्षेत्र नहीं था। यह कहा जाता है कि उसके पिता विव्य चन्द्र ने नगरकोट का दुर्ग बनाया था, परन्तु यह तथ्य नहीं है। नगरकोट रामायण काल का दुर्ग है और इसका आदर्श राजा बाणबट रामचन्द्र जी का समकालीन था।

दूसरा विख्यात राजा जय चन्द्र था। वह शिव भक्त था और साथ ही कलाकृतियों का प्रेमी था। उसने दो प्रसिद्ध मंदिरों का निर्माण किया जो यथावत् खड़े हैं। उसने पहला मन्दिर ९वीं शताब्दी में शिव मंदिर की स्थापना बैजनाथ में की। महाभारत का पहला ज्योतिर्लिंग शिव मंदिर है। इसके दर्शन करने के लिए सारे देश से शिव भक्त आते हैं। इस शिव मंदिर के बारे में एक विशेष बात यह है कि शिवरात्रि के समय शिवभक्त लिंग के चारों ओर मक्खन लगा देते हैं और इतनी अधिक मात्रा में यह मक्खन लग जाता है कि इसकी कई तहें बन जाती हैं। शिव शंकर के वरदान से यह मक्खन आयुर्वेद की दवाई बन जाता है और लोग इससे कई बीमारियों का उपचार करते हैं।

इस राजा ने दूसरा प्रसिद्ध मंदिर मसरूर (शाहपुर के निकट) पूरी चट्टान को काट कर बनवाया। यह मंदिर अजंता-एलोरा जैसी चट्टान में से कटे मंदिर के नमूने पर बनाया गया है। हज़ारों पर्यटक इसे देखने के लिए हर साल आते हैं और इसे देखकर आश्चर्यचकित हो जाते हैं कि वास्तुशास्त्र की किस विधि से इस मंदिर को बनाया गया है।

(३)	तीसरे कालखंड में ५१ राजा हुए। इस अवधि में कटोच वंश के ही अंतर्गत छोटे राज्यों की स्थापना हुई। ४४१वें राजा पद्म चन्द्र के उत्तराधिकारियों ने जसवां के राज्य की स्थापना १२वीं शताब्दी में की। राजा पद्म चन्द (११७०) ने पृथ्वी राज की सहायता मुहम्मद गौरी के आक्रमण के समय की। ४५६वें राजा हरिचन्द (ईस्वी १४०५) ने गुलेर के राज्य की स्थापना की। इसका क्षेत्रफल ३७० वर्ग मील

था। पितृ राज्य कांगड़ा था। वहां के राजा कर्म चन्द ने राजा हरि चन्द को कोटला और त्रिलोकपुर के क्षेत्र भी दे दिए। राजा हरिचन्द ने अपनी उपाधि बदल कर नई उपाधि गुलेरिया अपना ली। उसने हरिपुर का दुर्ग बनाया।

कुछ वर्षों के बाद हरिपुर का राज्य डाडा सीबा और दत्तारपुर में विभक्त हो गया। डाडा की स्थापना सिवरण चन्द्र ने की। इसलिए राज्य का नाम डाडासीबा पड़ गया।

ईस्वी सन १६२७ महाराजा चन्द्रभान ने अपने नाम पर चन्द्रभान का दुर्ग ६००० फुट की ऊँची पहाड़ी पर बनाया। चामुंडा देवी का मूल मंदिर इसी किले में है। इस दुर्ग को केन्द्र बनाकर मुगलों के विरूद्ध छापा मार युद्ध शुरू किए।

४७१वें महाराजा विजय राम चन्द्र ने (ई0 सन् १६५८) विजयपुर दुर्ग में एक भव्य महल का निर्माण किया।

४७३वें महाराजा विक्रम भीम चन्द्र ने (ई0 सन् १६८६) औरंगज़ेब के विरूद्ध गुरूगोविन्द सिंह का साथ दिया और उनके साथ मिलकर मियां खां और जम्मू के राजा जिनको औरंगजेब ने पंजाब के विद्रोह को समाप्त करने के लिए भेजा था, पूर्णतः पराजित किया। इसके लिए गुरू गोविन्द सिंह जी ने उसे 'धर्म रक्षक' की उपाधि दी।

४७४वें राजा आलम चन्द्र-२ ने आलमपुर कस्बे को बसाया। ४७५वें राजा हमीर चन्द्र (ई0 सन् १७००) ने हमीरगढ़ का दुर्ग निर्माण किया और हमीरपुर का नगर बसाया।

४७६वें राजा अभय चन्द्र ने रियाल-टीरा-अभयपुर के दुर्ग का निर्माण किया। (ई0 सन् १७४७)

उपरोक्त सब राजाओं में अति प्रसिद्ध और सम्मान प्राप्त महाराजा संसार चन्द द्वितीय (ईस्वी सन् १७६५) हुये हैं जिनके राज्य को "कांगड़ा का स्वर्ण युग कहा जाता है।"

महाराजा संसार चन्द्र ने सन् १७७५ ई0 में अपना गौरवशाली प्रशासन कांगड़ा में शुरू किया। कांगड़ा के राज्य की चाबी नगरकोट (कांगड़ा) का दुर्ग रहा है जिसके पास नगरकोट वही कांगड़ा का राजा माना जाता था, परंतु उस समय यह दुर्ग कन्हैया मिसल के प्रमुख सरदार जय सिंह के अधिकार में था। महाराजा संसार चन्द्र ने अपने पूर्वजों के उस दुर्ग को जय सिंह से लेने के लिए वार्तालाप किया, परंतु वह नहीं माना। संसार चन्द ने उसके घोर शत्रु 'सकर चकिया' मिसल के सरदार महासिंह और जस्सा सिंह रामगढ़िया की सहायता से दुर्ग पर आक्रमण कर दिया। महाराजा संसार चन्द ने जय सिंह के मैदानी इलाकों पर कब्जा कर लिया और उसके पुत्र को बटाला में मार दिया। दुर्ग का घेरा चार साल तक चला और अंत में जयसिंह ने दुर्ग संसार चन्द को समर्पित कर दिया।

नगरकोट के दुर्ग को वापिस लेने के बाद संसार चन्द ने अपने राज्य के विस्तार के लिए सैनिक अभियान आरंभ किया। चम्बा के राजा ने सीमावर्ती कुछ भागों को अपने अधिकार में कर लिया था। अतः उन हिस्सों को प्राप्त करने के लिए चम्बा पर आक्रमण कर दिया। वहां का राजा मारा गया और संसार चन्द ने भरमौर को छोड़ कर चम्बा के बाकी राज्य को अपने राज्य के साथ मिला

लिया।

उसके बाद मण्डी राज्य पर धावा बोल दिया और वहां के राजा को गिरफ्तार कर नादौन के चौमुखी दुर्ग में कैद कर दिया। वह १२ साल तक वहां उस जेल में रहा। राज्य को अपना कर दाता बना लिया। कुल्लू के राजवंश के साथ पूर्व की सन्धि के अनुसार जो वार्षिक कर निश्चित कर उसे फिर अदा करने का आदेश दिया। लाहुल-स्पीति के छोटे मोटे राजाओं से पूर्व की भान्ति वार्षिक कर अदा करने का आदेश महाराजा संसार चन्द ने दिया। सुकेत के राजा ने संसार चन्द्र का विरोध नहीं किया और वार्षिक कर देना स्वीकार कर लिया।

अर्की राज्य पर आक्रमण कर उसको अपना कर दाता बनाया। सिरमौर के राजा को युद्ध में हरा कर उसे भी अपना कर दाता बना लिया। कुटलैहड़ के राजा को युद्ध में हराकर उसका सारा राज्य कांगड़ा राज्य में मिला लिया। कुटलैहड़ के दुर्ग को नष्ट कर उसके स्थान पर १६ विभिन्न दुर्गों का निर्माण कर उनको १६ सिंघी नाम दिया – अर्थात १६ कोट गढ़ियां। यह कांगड़ा की दक्षिण-पश्चिम सीमा से रक्षा के लिए बनाई। बिलासपुर पर आक्रमण कर महाराजा संसार चन्द ने सतलुज नदी के पश्चिम क्षेत्र को अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया।

इस प्रकार संसार चन्द ने इतनी बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त की जो पूर्व में किसी पहाड़ी नरेश को प्राप्त नहीं हो सकी। २० वर्ष तक किसी को भी संसार चन्द्र के सामने खड़े होने का साहस नहीं हुआ। उसका साक्ष्य नीचे विवरण से मिलता है :

टीहरा सुजानपुर में उस ने जो दरबार हाल बनवाया उसके २२ गेट थे। ११-११ दोनों तरफ। हर राजा के लिए दरबार हाल में प्रवेश करने के लिए व्यक्तिगत दरवाजा था - प्रवेश करते समय सिर झुकाने के लिए। उसके बाद उनको महाराजा संसार चन्द्र के सोने के सिंहासन के सामने प्रणाम करना पड़ता था। करदाता राजाओं को वर्ष में एक बार दरबार में आना होता था।

सुजानपुर के दुर्ग में संसार चन्द्र ने अष्टधातु की शिव, पार्वती और नन्दी की मूर्तियां बनवाई थीं।

चारों ओर से दीवारों से सुरक्षित नादौन नगर की स्थापना महाराजा संसार चन्द ने की थी। वह कला प्रिय था और "Kangra School of Painting" उसका प्रमाण है।

महाराजा संसार चन्द्र के राज्य का क्षेत्रफल २७ हज़ार वर्गमील था और उनकी वार्षिक आय ३५ लाख थी।

उनका राज्य कांगड़ा का स्वर्ण युग था और इसी कारण उनको छत्रपति नरेश महाराजा संसार चन्द्र, अलंकार-मार्तंड-महाराजा संसार चन्द की उपाधियों से अलंकृत किया गया।

(४) चौथे कालखंड में अर्थात महाराजा संसार चन्द्र से महाराजा ध्रुव चन्द्र तक ६ राजा हो चुके हैं और ४८८ वे राजा आदित्य देव वर्तमान में कटोच वंश के प्रमुख प्रतिनिधि हैं।

महाराजा संसार चन्द इतना शक्तिशाली था कि महाराजा रणजीत सिंह भी उससे डरता था। संसार चन्द्र के दरबार में यह बात प्रचलित थी - "लाहौर प्राप्त"। अर्थात् महाराजा संसार चन्द लाहौर

प्राप्त करने में सक्षम है। उस समय नेपाल के गोरखा नेपाल से लेकर कश्मीर तक एक बड़ा पहाड़ी राज्य का निर्माण करना चाहते थे। महाराजा रणजीत सिंह की भी महत्त्वकांक्षा अपने राज्य को विस्तृत करने की थी। गोरखों ने पूर्वी हिमाचल प्रदेश के शिमला के राजाओं और सिरमौर को विजय कर लिया था। वह और आगे बढ़े परंतु महाराजा संसार चन्द ने उन्हें लड़ाई में पराजित किया और सतलुज तक की सीमा तक आबद्ध कर दिया। इस बीच में नेपाल के अमर सिंह थापा ने कांगड़ा राज्य के अंतर्गत पहाड़ी राजाओं को अपने साथ मिला लिया और बिलासपुर के राजा के नेतृत्व में सारे अन्य पहाड़ी राजा महाराजा संसार चन्द के खिलाफ अमर सिंह थापा के साथ मिल गये और उनकी संयुक्त सेनाओं ने कांगड़ा राज्य पर आक्रमण कर दिया और कांगड़ा का बहुत सारा क्षेत्र जीत लिया और अमर सिंह थापा ने कांगड़ा के किले को घेर लिया। महाराजा संसार चन्द्र सुजानपुर से कांगड़ा दुर्ग में आ गया।

महाराजा रणजीत सिंह के साथ ज्वालामुखी की सन्धि

महाराजा संसार चन्द ने अमर सिंह को भगाने के लिए सन्धि कर ली और उसके अनुसार कांगड़ा का दुर्ग और जालन्धर दोआबा महाराजा रणजीत सिंह को देना स्वीकार कर लिया। महाराजा रणजीत सिंह की सेना ने अमर सिंह थापा को पराजित कर भगा दिया। महाराजा संसार चन्द ने सन्धि की शर्तों को पूरा किया और सुजानपुर चला गया। कांगड़ा राज्य का इस प्रकार पतन हुआ। बाद में कांगड़ा का राज्य अंग्रेजों के अधिकार में आ गया और उस चौथे कालखंड में जितने राजा हुए उनका अपना कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं था। महाराजा संसार चन्द का देहावसान सन् १८२३ में हो गया।

कटोच वंश का अंतिम राजा ध्रुव देव चन्द्र था। उसने पंजाब में सबसे पहले अपने राज्य का विलय भारत की संघ के साथ किया। सन् १९७२ में भारत सरकार ने राजाओं के Privy Purse को कानून पास कर समाप्त कर दिया।

इति।

विलक्षण व्यक्तित्व द्वितीय सरसंघचालक

श्रीगुरुजी का विलक्षण व्यक्तित्व था। वह बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। परन्तु अपने संबन्ध में बहुत कम बोलते थे। कभी न कभी अनौपचारिक वार्तालापों में उनसे बड़ा महत्वपूर्ण मार्गदर्शन और अनकही बातें सुनने का सौभाग्य प्राप्त होता था। ऐसे ही प्रसंगों के उनके कुछ संस्मरण इस लेख में प्रस्तुत किये जा रहे हैं –

श्री गुरुजी– लोग पूछते हैं कि संघ का कार्य कब तक चलेगा? यह प्रश्न पश्चिम बंगाल के प्रान्त प्रचारक श्री यमल कुमार बोस (अमलदा) ने गत शताब्दी के साठ के दशक में सन् १९६३ में उस समय किया, जब पश्चिम बंगाल का प्रवास समाप्त कर श्रीगुरुजी असम के प्रवास पर जा रहे थे। गाड़ी में मैं और अमलदा उनके साथ थे। गुरुजी ने अमलदा से पूछा कि यह प्रश्न लोगों का है या तुम्हारा?' तो अमलदा ने कहा कि कुछ मात्रा में मेरा भी है। तब गुरुजी ने जो उत्तर दिया, वह महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने कहा अमलदा , **मानों कि कल सारी दुनियां में हिन्दुओं का राज्य हो जाता है तो भी संघ चलेगा।**

संघ और राजनीति : डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी अंतरिम सरकार से त्यागपत्र देकर, नागपुर में श्रीगुरुजी से मिलने आए और कहने लगे, 'गुरुजी मैं हिन्दू महासभा में नहीं जाऊंगा और राजनीति तब करूंगा, जब संघ राजनीति में प्रवेश करेगा।' श्रीगुरुजी ने कहा, आपके जैसा श्रेष्ठ पुरुष यह कहे कि अब संघ का काम समाप्त हो गया है और वह अब राजनीति करे। उन्होंने कहा कि यह तो मैं नहीं कहता, परन्तु मैं राजनीति आज के किसी दल में जाकर नहीं करना चाहता हूं। तब श्रीगुरुजी ने कहा कि आप और आपके परिवार की प्रतिष्ठा केवल अपने देश में ही नहीं अपितु विदेशों में भी है। अतः आप अपना राजनैतिक दल बनाएं। यह सुनकर बोले कि दल तो मैं अपना बना सकता हूं, परन्तु संघ मेरा सहायता करेगा क्या? इसका जो उतर श्रीगुरुजी ने दिया, वह हम सब के लिए महत्त्वपूर्ण और अनुकरणीय है। श्रीगुरुजी ने उतर दिया अंग्रेजी में "If your party will work according to Hindu ideology and remain committed to it. Then Swyamsevak not as Swayamsewak of sangh but as citizens of the state will help you, but if not then you should not take sangh for granted."

अर्थात् यदि आपका दल यदि हिन्दू विचारधारा के अनुसार कार्य करेगा और उसके प्रति प्रतिबद्ध रहेगा तो स्वयंसेवक संघ के स्वयंसेवक के नाते नहीं अपितु देश के नागरिक के नाते आपका सहयोग करेगा। यदि ऐसा सम्भव नहीं तो संघ के सहयोग की गारन्टी न समझें।

संघ एवं अन्य क्षेत्र :एक बार श्रीगुरुजी असम के प्रवास पर आने वाले थे। हम कुछ कार्यकर्ता उनको लेने के लिए गुवाहटी के हवाई अड्डे पर गए। विमान कोलकाता से ठीक समय पर आया और श्रीगुरुजी

कार से गुवाहटी नगर के लिये रवाना हुए। उनके साथ कार में एक पुराने स्वयंसेवक श्री केशवदेव बावरी भी बैठे थे। वे उस समय जनसंघ में काम करते थे। उन्होंने श्रीगुरुजी से पूछा – गुरुजी जनसंघ का काम किस प्रदेश में अच्छा है? गुरुजी ने उनसे पूछा कि 'अच्छे का अर्थ क्या है?' संगठन, विधायक, सांसद या सता श्री बावरी ने कहा कि सभी दृष्टि से। तो श्रीगुरुजी ने कहा कि अन्य क्षेत्रों के कार्य का अर्थ जो मैं समझता हूं वह यह है कि अन्य क्षेत्र में कार्य करने के लिए जिसको भेजा है, वह संघ का कार्यकर्ता है। अतः वह उस क्षेत्र में उन लोगों को उस काम में लाएगा जो स्वयंसेवक नहीं और उनमें से जो संघ के कार्य सके लिए उपयुक्त हैं, उनको स्वयंसेवक बनाएगा। यह सुनकर श्री बावरी चुप हो गए। श्रीगुरुजी असम का प्रवास कर वापिस चले गए। मैं एक दिन श्री केशवदेव बावरी से मिलने उनके निवास पर चला गया और उनको पूछा कि आपने श्रीगुरुजी से प्रश्न पूछा था? परन्तु उनके उतर के बाद आप बोले नहीं। तो उन्होंने कहा कि श्रीगुरुजी का उतर सुनकर में बहुत शर्मिन्दा हो गया क्योंकि उन्होंने कहा कि अन्य क्षेत्र में गए हुए कार्यकर्ता को अपने क्षेत्र के लोगों में से स्वयंसेवक भी बनाने चाहिए। परन्तु स्वयंसेवक बनाने वालों को स्वयं शाखा में आना आवश्यक है जब से मैं राजनीति में गया हूं, शाखा से अनियमित हो गया हूं। परन्तु अब मैंने दो दिन से पुनः शाखा में जाना शुरू किया है। श्रीगुरुजी ने अन्य क्षेत्रों के कार्य की दृष्टि से **प्रतिदिन शाखा में जाने का सूत्र बताया है, यही समन्वय का मूल आधार है।**

उसी समय का अन्य उदाहरण भी कम महत्त्व का नहीं है। जब असम में जनसंघ के प्रमुख कार्यकर्ता श्री रमेश कुमार मिश्र श्रीगुरुजी को गुवाहटी में मिलने के लिए आए।श्री गुरुजी ने उनको पूछा, कहो रमेश जी क्या हाल है? तो उन्होंने उतर दिया, बाकी तो सब ठीक है परन्तु एक समस्या है कि सभी शीघ्रातिशीघ्र सता में आना चाहते हैं। तो श्रीगुरुजी ने उन्हें एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात कही। **आपको राजनीति के क्षेत्र में केवल सता में आने के लिए नहीं भेजा है बल्कि समाज को राजनीति में हिन्दूत्व की दृष्टि से संगठित एवं प्रशिक्षित करने के लिए भेजा है। यदि तुम इंग्लैड की लेबर पार्टी की तरह ४० वर्ष तक भी सता में नहीं आए, तो भी चिन्ता की बात नहीं।**

श्रीगुरुजी शुद्ध अमिश्रित एवं अटल हिन्दू राष्ट्र में विश्वास रखते थे। गुवाहटी में एक बार उनके लिए प्रतिष्ठित नागरिकों की बैठक आयोजित की थी। उसमें नगर के प्रसिद्ध अधिवक्ता भी थे। राष्ट्रीयता के विषय पर चर्चा चल रही थी तो एक जगदीश मेघी नामक प्रसिद्ध अधिवक्ता ने कहा – 'श्रीगुरुजी जिस हिन्दू राष्ट्रीयता के बारे में आप बोल रहे हैं, असम में तो इसे सफल होने में कम से कम १२-१३ वर्ष लग जाएंगे।' तो श्रीगुरुजी ने उत्तर दिया 'मैं उस समय तक प्रतीक्षा कर सकता हूं।'

जब लाहौर में सुरक्षा के मोर्चे पर स्वयंसेवकों के साहस को देखकर एक ब्रिगेडियर आश्चर्यचकित हो गया – विभाजन के बाद सन् १९४७ में श्रीगुरुजी के प्रवास के निमित्त अमृतसर नगर में एक बड़े सार्वजनिक कार्यक्रम के बाद वह श्रीगुरुजी से मिलना चाहते थे। मैंने कारण पूछा तो 'उन्होंने कहा कि मैं गुरुजी से ही बात करूंगा।' मैं उनको जहां श्रीगुरुजी ठहरे थे, वहां ले गया। कक्ष में प्रवेश करते ही उन्होंने श्रीगुरुजी के चरणों को स्पर्श करना चाहा, परन्तु श्रीगुरुजी ने कहा, 'आप सेना के अधिकारी है और आयु में भी मेरे से कम नहीं है। अतः आपको मेरे चरण स्पर्श नहीं करने चाहिए।'

तो वे बोले, 'मैं आपके चरणों को स्पर्श नहीं कर रहा हूं अपितु मैं संघ की उस शक्ति के सम्मुख नतमस्तक हो रहा हूं जिसके १२-१४ वर्ष के लड़कों ने वह साहसपूर्ण कार्य किया जो मेरे सैनिक भी नहीं कर सके।' **घटना इस प्रकार है** — विभाजन के समय सुरक्षा की दृष्टि से मैं लाहौर में नियुक्त था। वहां एक हिन्दू मुहल्ले में मुस्लिम लीग के नेशनल गार्डस ने आग लगा दी। मकान जल रहे थे। वहां के लोग जैसे-तैसे बाहर निकल आए, परन्तु कुछ बाल किशोर बच्चे पीछे रह गए। उनके माता-पिता बाहर खड़े चिल्ला रहे थे कि हमारे बच्चों को बचाओ। तो मैंने अपने सैनिकों की उनकी सहायता करने के लिए कहा, परन्तु उन्होंने कहा कि यह तो हमारा काम नहीं है अपितु फायर ब्रिगेड का है। इतने में संघ के निक्कर धारी १३-१४ वर्ष के लड़के वहां आए। उन्होंने आव देखा न ताव जलते मकानों में घुस गए और अपनी जान पर खेल कर बच्चों को सुरक्षित निकाल के बाहर लाकर उनको रोते माता-पिता को सौंप दिया। अतः मैं जानना चाहता हूं कि आप इन संघ के लड़कों को क्या जादू या तन्त्र-मन्त्र सिखाते हैं कि उन्होंने अपनी जान की परवाह न करते हुए वह काम कर दिखाया जो मेरी सेना के नौजवान नहीं कर सके। श्रीगुरुजी ने कहा कि संघ में इनको कोई जादू या मन्त्र नहीं सिखाया जाता है वे रोज एक घंटे के लिए एकत्रित होकर कबड्डी खेलते हैं और इसी कारण इनमें साहस का गुण आ गया है। (यह है दैनिक शाखा का महत्व)

भविष्य में घटित होने वाली घटनाओं का भी श्रीगुरुजी को पूर्वाभास हो जाता था जिसके कुछ उदाहरण इस प्रकार से हैं —

१. डॉ. श्यामप्रसाद मुखर्जी ने 'एक देश, एक राष्ट्र और एक निशान' के आन्दोलन में जम्मू-कश्मीर की रावी नदी के साथ लगी सीमा के लखनपुर गांव में सत्याग्रह करने की घोषणा कर दी। तब श्रीगुरुजी नहीं चाहते थे कि वह सत्याग्रह करें और इसके संबन्ध में उन्होंने डॉ. मुखर्जी के नाम एक पत्र लिखकर जनसंघ के एक कार्यकर्ता को दिया ताकि वह उनको पहुंचा दें। परन्तु समय पर वह पत्र नहीं मिला। उन्होंने सत्याग्रह किया और फिर कश्मीर से वापिस नहीं लौटे। श्रीगुरुजी को यह पहले ही बोध हो गया था।

२. दूसरा उदाहरण श्री लालबहादुर शास्त्री जी का है। श्रीगुरुजी नहीं चाहते थे कि वह ताशकंद जाएं और इस दृष्टि से उन्होंने उनको सूचित करने का प्रयत्न किया था कि वह इतने बड़े देश के प्रधानमन्त्री हैं। उनको वहां नहीं जाना चाहिए। किसी अन्य अधिकारी को वहां भेज देना चाहिए। परन्तु इस बात पर किसी ने ध्यान नहीं दिया। वह गए और जिन्दा वापिस नहीं आए।

३. तीसरी घटना उनके स्वयं के बारे में है। सन् १९६३ में जब वह असम के प्रवास पर गुवाहटी पधारे थे तो उनको मिलने और आशीर्वाद लेने के लिए डॉ. दिलीप सरकार और उनकी धर्मपत्नी शेफाली दोनों आए थे। आशीर्वाद लेने के पश्चात शेफाली ने कहा, गुरुजी आपको अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखना चाहिए ऐसा मेरा नम्र निवेदन है। श्रीगुरुजी ने कहा, अब तो केवल आठ-दस वर्ष काम करना है। इसके लिए मेरा स्वास्थ्य सक्षम है।' हम श्रीगुरुजी की यह बात समझ नहीं पाए और ठीक १० वर्ष पश्चात् सन् १९७३ में वे चले गए।

लाहौर में संघ का पौधा लगा

देश के विभाजन से पहले की बात है। बाबा साहब हर वर्ष की भान्ति पंजाब के दौरे पर आए थे। लाहौर शाखा की ओर से उनका शुभागमन एक बड़े ही सार्वजनिक कार्यक्रम से शुरू हुआ। शारीरिक कार्यक्रमों के बाद बाबा साहब का भाषण पूरे एक घण्टे तक लाहौर के स्वयंसेवकों और उनसे कई गुना अधिक लाहौर की हजारों जनता ने वहां कृष्णा नगर के विशाल मैदान में सुना। इसी क्षेत्र के बाद में लाहौर शाखा का कार्यालय भी बना था। अंग्रेजों का उस समय राज्य होने के कारण उनके गुप्तचर विभाग की संघ पर कड़ी नजर थी। इसलिए अपने वहां के कार्यक्रम पर ऊंचे तुर्रेवाली खाकी पगड़ियां पहने हुए पांच-छः सी.आई.डी. के लोग पहुंचे थे। बाकी जनता के साथ उनको भी बैठने के लिए कुर्सियां दी गई थीं श्री आपटे जी का भाषण लिखने के लिए वे कागज-पेंसिल अपने साथ लाए थे। भाषण शुरू होने के साथ ही उन्होंने कलमें निकाल कर लिखना आरम्भ किया। परन्तु चार-पांच मिनट के पश्चात् उन्होंने लिखना बन्द कर दिया और इधर-उधर जाने का प्रयत्न किया परन्तु रक्षक स्वयंसेवकों ने उन्हें वहीं बैठाये रखा। जब कार्यक्रम समाप्त हुआ और सभी अपने-अपने घर जाने लगे तब उनमें से एक ने एक स्वयंसेवक से पास जाकर पूछा कि ''बाबा साहब ने अपने भाषण में क्या कहा है?'' स्वयंसेवक ने कहा कि ''आप सबने बैठकर भाषण पूरा-पूरा सुना है, फिर हमसे क्यों पूछते हो?''

वे बोले—''हम अन्त तक बैठे रहे परन्तु हमारे पल्ले कुछ नहीं पड़ा। बाबा साहब ने अपने भाषण की शुरूआत में एक बीज बोया, वह उगा और पौधा बन गया। उसका पालन-पोषण कर उसे पेड़ बना दिया गया और बाद में इतना विशाल बन गया कि अपने राष्ट्र के करोड़ों लोग उसकी छाया में विश्राम करने लगे और उनकी सारी आशा-आकांक्षाए उसी पेड़ के नीचे आने से पूरी हो गईं, यही हमारी समझ में आया है। परन्तु हमें आश्चर्य है कि बाबा साहब ने यह पेड़ किसलिए लगाया? इसका अर्थ क्या था? हमने बड़े-बड़े नेताओं के भाषण सुने हैं, परन्तु इस तरह का भाषण हमने कभी नहीं सुना।''

स्वयंसेवक भी चतुर था। उसने कहा कि — ''जितना आप लोगों की समझ में आया है, उतना ही मैं भी समझा हूं।'' इस पर भी उन्होंने इधर-उधर पूछने की कोशिश की परन्तु लाभ न हुआ।

श्री बाबा साहब ने जो कुछ भाषण में कहना था वह सब कह दिया और स्वयंसेवकों ने भी उसे पूरा समझ लिया परन्तु सी.आई.डी. के उन लोगों को अपने कोरे कागज और खाली दिमाग वापिस जाना पड़ा।

उनकी तेजस्विता की एक और घटना है। उन दिनों मैं अमृतसर विभाग का प्रचारक था। श्री बाबा साहब पंजाब के दौरे पर थे। अमृतसर नगर में भी उनका कार्यक्रम था। स्वयंसेवकों के बौद्धिक वर्ग और कार्यकर्ताओं की बैठक के बाद नगर के प्रतिष्ठित लोगों की एक बैठक के बाद नगर के नगर संघचालक स्वर्गीय पण्डित ज्ञानचन्द्रजी के घर आयोजित थी। श्री आपटे जी का परिचय कराया गया। उसके बाद जलपान हुआ। श्री आपटे जी ने संघकार्य के बारे में अपने विचार रखे। तत्पश्चात् कुछ प्रश्नोत्तर भी हुए। एक सज्जन बार-बार एक ही बात पूछते और साथ में यह भी कहते थे कि जो कुछ आपने कहा है वह तर्क की कसौटी पर पूरा उतरता है, परन्तु मेरा समाधान नहीं हुआ। श्री आपटे जी ने दो-तीन बार समझाने का प्रयत्न किया परन्तु सब विफल। वे तुरन्त ताड़ गए कि वह व्यक्ति पूर्वाग्रही विचारों का है और तर्क के लिए तर्क करता है। वे जोर से बोले, ''यद्यपि मैं जो कुछ कहा रहा हूं वह सत्य है, ऐतिहासिक प्रमाणों से पुष्ट है फिर भी मैं जान रहा हूं कि आप नहीं मानेंगे। You will not be convinced by arguments, because you believe in arguments backed by bayonets." इस पर उक्त सज्जन बोले, ''आपटेजी, बस करिए, अब मैं समझ गया।''

मनुष्य को परखने में वे निपुण थे क्योंकि उक्त सज्जन कम्युनिस्ट विचारधारा के मानने वाले थे।